रावी-पार

बलवन्त सिंह



राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

मूल्य रु 16 00

बलवन्त सिंह

प्रथम संस्करण 1980

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
8, नेताजी सुभाष मार्ग नयी दिल्ली 110002

मुद्रक शब्दशिल्पी द्वारा अनिल प्रिण्टर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032

आवरण चाँद चौधरी

RAAVI PAAR
Novel *by* Balwant Singh

शशि प्रभा को

यो तो बलवन्त सिंह ने अपनी कहानियाँ और उपन्यासों में जीवन और समाज के कई पहलुओं पर प्रकाश डाला है परन्तु पंजाब के जीवन को हिन्दी में पेश करने का सेहरा केवल उन्हीं के सर रहेगा। एक आलोचक के कथनानुसार बलवन्त सिंह का पंजाब अलिफ लैला से भी अधिक दिलचस्प लगता है।

कहने को तो रावी-पार एक रोमाण्टिक कहानी है परन्तु इस उपन्यास में हमें सन् 1927-28 के पंजाबी देहात का जीता जागता टुकड़ा अपनी आँख के सामने चलता फिरता नज़र आता है। यह देहाती जीवन ज़िला लाहौर, ज़िला गुजराँवाला और ज़िला शेख़ूपुरा के लोगों का है। इस जीवन की झलक अब हम शायद कभी देख नहीं पायेंगे क्योंकि अब यह तीनों ज़िले पाकिस्तान में जा चुके हैं। बटवारे से पहले यह इलाके एक प्रकार से सिक्खों के गढ़ थे।

चब्बा

रावी नदी से क़रीब दो मील पूर्व एक गाव है जिसे चब्बा कहते हैं। इस गाव स आध मील दूर आक के पौधो के निकट ही बबूल का एक बहुत बडा पेड है। इसकी छाव घनी नही होनी, लेकिन लोग इसकी टहनियो को काट लेत ह और दातून के तौर पर उपयोग करत हैं। इसी पेड के पास से एक कच्चा रास्ता गाँव तक चला गया है। यह रास्ता इतना चौडा है कि इस पर दा बलगाडिया पहलू-ब पहलू चल सकती हैं।

सर्दी का मौसम है। वह चौडा रास्ता भीगा-भीगा-सा दिखायी देता है। लगता है, जैसे वह मारे सर्दी के सिकुडता हुआ गाव की ओर सरकता चला जा रहा है।

खेता म उग हुए हरे-भरे पौधा से भाप उठ रही है। रात भर धुध की रजाई ने इन खेता को अपनी लपेट मे लिये रखा, लेकिन जब सूय देवता उपस्थित हुए तो पहले तो धुध और कोहरे न उनको भी मुँह चिढाया, लेकिन सूय दवता ने उत्तेजित होकर जो अपनी किरणो के भाले फेंके तो धुध कसमसान लगी और पौधो की जडा, डण्ठला और पत्तिया पर सोयी हुई नमी भाप बन-बनकर आकाश की ओर उठने लगी। फिर दूर तक फैले हुए पडा की पत्तियाँ भी हलके-हलके हिलने डुलने लगा। मालूम होता था, जस सर्दी की तीव्रता ने पेडा, उनकी टहनियो और पत्तियो को रात भर सुन सा रखा और अब धूप की गरमी ने इन्हे नहलाया तो ये सब अँगडाइयाँ लेन लग।

दूर से चब्बा गाँव यू दिखायी देता है, जैस गाय का गोबर धूप म पडा-पडा सूख गया हो, क्योकि इस गाँव के करीब-क़रीब सभी मकान कच्चो

इटो के बने हुए हैं। शहरो में पक्की इटो पर जैसे सीमेण्ट का पलस्तर किया जाता है, उसी तरह इन कच्ची इटो की दीवारो पर भूसा और गोबर मिले मिट्टी के गारे का पलस्तर किया जाता है। अगर इन दीवारो को करीब से देखा जाय तो भूसे के तिनके साफ नजर आते है। कभी-कभी जब सूर्य तेजी पर होता है तो ये तिनके धूप में चमकने भी लगते है।

ज्यो ज्यो रोशनी फैल रही है त्यो त्यो मकानो की हलकी हलकी लकीरें भी दिखायी देने लगी। रोशनी के साथ गाव धीरे धीरे जाग उठता है औरतें दही के मटको में बडी-बडी मथनिया डाल देती हैं और घर-घर से दही बिलोने की आवाजें उठने लगती हैं। आकाश पर कौओ, कबूतरो, तोतो और तिलियरो के झुण्ड चक्फेरिया लेते दिखायी दे रहे है। घरेलू चिडिया दूर से नजर नही आती। यह मटियाले रग की हल्की फुलकी चिडिया कच्ची दीवारो पर फुदकती फिरती हैं। अगर नीचे धरती पर उन्हे खाने की कोई चीज दिखायी देती है तो वे फुर से उडकर वहाँ जा पहुँचती हैं। इनमे एक और चिडिया भी होती है, जिसे लाली कहते हैं। यह डील डौल में बडी होती है। इसकी चोच अकसर पीली और बदन का रग सुर्खी मिला भूरा सा होता है। यह भी अपनी छोटी बहनो की तरह बडी मासूम होती है। सुबह के समय इन सब चिडियो को घरो में ही अपनी खुराक मिल जाती है, लेकिन तोते, कबूतर और तिलियर आदि अपनी खुराक खेतो में ढूढते हैं।

पुराने पजाब के हर गाँव की तरह चब्बा भी रहटो से घिरा हुआ है। ये रहट खेतो को सीचने के काम आते हैं, लेकिन कुछ रहट गाँव के बिलकुल पास बने होते है ताकि लोग उनका पानी पीने के लिए अपने घर ले जा सकें। अक्सर मर्द और लडके-बाले इन रहटो के पानी में ही नहाते है। लकडी के एक बडे चरखडे को दो बैल घुमाते हैं और इन चरखडो पर रस्सियो की बुनी हुई एक बडी माहल होती है। इस माहल में मिट्टी के पक्के हुए बडे-बडे कसोरे होते हैं जिन्हे टिण्ड या टिण्डे कहते हैं। जब चरखडा घूमता है तो ये टिण्ड उलटे मुह कुएँ की ओर बढते है और फिर पानी में डुबकी लगाकर दूसरी ओर से ऊपर को चढने लगते हैं। जब ये चरखडे की गोलाई पर घूमते हैं तो इनमे भरा पानी उलटकर लोहे की

बनी हुई नांद मे गिरता है और वही से यह पानी एक पाडछे के द्वारा आगे बढता है और फिर एक मोटी धार की शक्ल म नीचे गिरता है। जिस जगह यह गिरता है उसे औलू कहते हैं। अक्सर यह पाडछा जमीन से चार या पाँच फुट ऊँचा होता है ताकि लोग इसके नीचे खडे होकर आसानी से पानी भर सकें या नहा-धो सकें। और फिर यह पानी आड (नाली) मे बहता हुआ सेना को निकल जाता है। इस समय चब्बा के चारो ओर इन बहुत म रहटा की रूँ-रूँ की आवाज भी गूज उठी है।

हर गाव के निकट एक दो और कभी ज्यादा भी जोहड जरूर होते हैं। यह जोहड गोया कच्चे तालाब होत हैं जो बरसात मे पानी से भर जाते हैं। उन दिना मेढक न जाने कहाँ से वहाँ आ जमा होत हैं और अपनी भद्दी आवाजें गाँव की अन्य आवाजा मे मिला दते है। जरा-सा खतरा महसूस करते ही य मेंढक गडाप गडाप पानी म कूद जाते हैं। जोहड का यह पानी धीरे धीरे सूखकर गाढे कीचड की शक्ल म रह जाता है। और फिर मई-जून की गरमी मे ये जोहड बिलकुल ही सूख जाते हैं। तब उस सूखी जमीन पर केवल गाय मसो के खुरो के निशान ही बाकी रह जाते है। बाज तालाब ऐसे भी होत हैं जो कभी नही सूखते। वे इतने गहरे होते हैं कि उन्ह धरती के अन्दर के स्रोतो म पानी मिलता रहता है। इसी किस्म का एक तालाब चब्बा के करीब भी है, जिसे दवी दा छप्पड कहते है—यानी देवी का तालाब। यह तो नही कहा जा सकता कि इसका यह नाम कैसे पडा, लेकिन इतना जरूर है कि अब इस तालाब पर केवल देवियाँ ही जाती हैं और कुछ ऐसा रिवाज ही पड गया था कि मद इस तालाब पर कभी नही जाते। सुबह का नाश्ता करन के बाद लोहे के तसले सिर पर उठाये और उन पर रीठे के पानी म रात भर के भीग हुए कपडो को रखे औरतें और लडकिया अपनी सलवारें फडफडाती हुई दवी के छप्पड की ओर बढती। वहा पर सबसे बडा काम तो कपडे धोन का ही होता, लेकिन इसके साथ-साथ कुछ और भी महान काम हो जाया करत। गप्पें मारना, चुगलखोरी और एक-दूसरे की बुराइयाँ और अपन घरा के रोने धोन, जवान लडकियो के समूह अलग अपनी कायवाहियाँ करते—एक दूसरी किसी न किसी प्रेमी युवक के ताने दिय जाते और फिर कभी गरमा

राधो

हो जाती तो नौबत हाथापाई तक आ पहुँचती। जब युवतियां शोर मचाती और एक दूसरे पर हाथ चलाने लगती तो बडी बूढी औरतें उन पर बुरी तरह चिल्लाती और उन्हें पास बुलाकर सिर आगे डाल देती कि लो, हमारी जूएँ पकड-पकडकर मारो। जो लडकियां इस दण्ड से बच रहती वे उन पर हँसती और दूर ही दूर से उनका मजाक उडाती।

गाव के एक ओर बडा सा मैदान था, जिसे कल्लरवाली जमीन कहते थे, यानी यहा पर किसी किस्म की पैदावार नही हो सकती थी। चुनाँचे लोगो ने इस मैदान का यह फायदा उठाया कि यहां पर अक्सर चब्बा और इद गिद के गाव के युवक कबडडी खेला करते। कबडडी से ज्यादा सौंची खेलने का रिवाज था। अगर्चे सौंची खेलत समय कबड्डी-कबड्डी कहन की कोई जरूरत नही होती और न दम टूटने का डर होता है, लेकिन बदन की हडडी पसली टूटने का सदा ही डर लगा रहता। खिलाडिया की टोलियां एक दूसरे से अलग अलग बैठ जाती। उनके बीच मे कबड्डी के खेल की तरह पाले की कोई लकीर भी नही होती। एक पार्टी का खिलाडी उठकर दूसरी पार्टी के इलाके म जा खडा होता। उस समय उस खिलाडी का बदन तावे की तरह चमक रहा होता और उसके बाजू सीने और राना की मछलिया तडप रही होती। दूसरी पार्टी के खिलाडी उस जवान क मुकाबले का ही जवान उसका रास्ता रोकने के लिए भेज दते। पहले खिलाडी का काम यह होना कि वह रास्ता रोकनेवाले को मार पीटकर अपने इलाक मे चला आये। रास्ता रोकनेवाला खिलाडी पहले खिलाडी को मार तो नही सकता, लेकिन वह उसे अपने बाजुओ की लपेट म लेकर धरती पर पटक सकता और फिर उस हर तरह से जकडकर इस बात का कोशिश करता कि वह हिल डुल न सके। अगर वह इस तरह कुछ देर तक अपने मुकाबले के खिलाडी को विवश बनाये रखता तो पच उसकी जीत मान लेते, वरना पहला खिलाडी उसके चगुल से भाग निकलता।

सौंची खेलनेवाला के बदन और दिल ठण्डे फौलाद की तरह होत। कोई और आदमी इस खेल मे भाग भी नही ले सकता। इस खेल म इतनी सनसनी होती कि खेलनेवाला स देखनवाला को ज्यादा मजा आता। और छोट छोटे लडको के दिलो म भी यही भावना अँगडाई लेने लगती कि जब

वह जवान होगे तो इसी तरह सौंची खेला करेंगे।

चब्बा अपने ऊँचे-लम्बे जवानो के लिए अपने इलाके मे दूर दूर तक मशहूर था। हर लडका जब सोलह सत्रह साल की उम्र तक पहुँचता तो बडे लोग उसके हाथ पाव निकालने से अन्दाज़ा लगाने लगते कि वह कैसा करारा जवान होगा। जिस लडके से कुछ भी आशा बँध जाती, उसे हर ओर से खूब प्रोत्साहन मिलता। लोग हर तरह से ऐसे लडको के दिलो को बढावा देते और वे लडके भी अपनी ज़िम्मेदारी समझते हुए दिन रात कसरत मे जुटे रहते।

दबी दबी जबान मे गाव की खूबसूरत लडकियो के भी तज़करे होने लगते—बिल्लो की आखें अच्छी हैं तारो का रग गोरा है रानी की चाल मे मस्ती है लेकिन इस किस्म की बातें नौजवानो तक ही सीमित रहती और वे चादनी रातो मे गाँव से बाहर अपनी महफ़िलें जमाया करते और उन महफ़िलो मे प्रेम भरे गीत गा गाकर अपने दिलो की भडास निकाला करते।

जो जवान ज्यादा लक्कड होते, उनके मन को सौंची ही खेलकर शान्ति नही मिलती थी। वे अपनी लम्बी लाठिया पर चमकदार और तेज छवियो को चढाकर अँधेरी रातो मे दूर दूर तक निकल जाते। कही डाका मारते, कही किसी को ललकारते और अपना और दूसरो का खून बहाया करते थे। इनमे से कुछ तो इतने निडर हो जाते कि दिन दहाडे जरा जरा-सी बात पर खून खराबा करने पर उतर आते। इस इलाके मे आदमी दो तरह ही जिन्दा रह सकता था—या तो वह खुद धाकड बन बैठे और दूसरा पर अपनी धाक बिठा सके या फिर धाकडो के धाकडपन को बीच खेत के स्वीकार कर ले। यहा ऐसा नही हो सकता था कि कोई न तो किसी पर रोब डाले और न किसी का रोब सहे, बल्कि अपने काम से काम रखे। यहाँ तो कदम कदम पर ललकारनेवाले मिल जाते थे और इन्सान के लिए इसके सिवा कोई चारा नही रहता था कि या तो वह ललकारनेवाले को दबा ले, या खुल्लम-खुल्ला दबना मजूर कर ले। इसका उदाहरण नीचे लिखी एक छोटी-सी घटना मे मिल सकता है।

एक रात बागसिंह अपनी बैलगाडी पर गेहूँ की भारी बोरियाँ लादे

चला जा रहा था। रात अँधेरी थी इसलिए थोड़े फासले की चीज भी साफ दिखायी नही देती थी। चलते चलते बागडसिंह को अपने बैलो के अलावा दूसरे बैलो के गले मे बँधी हुई घण्टियो की आवाज़ सुनायी देने लगी। ये आवाज़ें उसके सामने से आ रही थी, जिसका मतलब यह था कि कोई दूसरी बैलगाडी सामने से चली आ रही थी। अब मुश्किल यह आन पडी कि नम ज़मीन मे बैलगाडियो के भारी पहियो से गहरी लीकें खिच गयी थी और बागडसिंह की बैलगाडी के पहिये उन्ही लीको मे धँस धँसे लुढकते चले जा रहे थे। सामनेवाली बैलगाडी के पहिये भी उन्ही लीको मे चले आ रहे थे। एक दूसरे से कुछ फासले पर पहुचकर दोनो बैलगाडिया रुक गयी। जिस हलके फुलके ढग से सामने की बैलगाडी चली आ रही थी, उससे बागडसिंह ने अन्दाजा लगाया कि वह बिलकुल खाली थी। इसलिए उसने भारी आवाज़ मे चिल्लाकर गाडीवान से कहा 'अरे भाई ! मेरी गाडी पर गेहूँ के बोरे लदे हैं इसलिए मुझे अपनी गाडी इन लीको से बाहर निकालने मे बडी मुश्किल पेश आयगी। तुम्हारी गाडी बिलकुल खाली है इसलिए तुम इसे लीको से निकाल लो ताकि मैं आगे बढ जाऊँ।'

दूसरे गाडीवान ने भी उतनी ही भारी और गरजदार आवाज़ से उत्तर दिया, कान धर के सुन लो, तुम्हारी गाडी मे चाहे बोझ लदा है या नही, लेकिन लीको से तुम्हे ही निकालना पडेगा !"

"क्यो ?"

"अब मैं क्यो का क्या जवाब दू ? बस इतना समझ लो कि हमारे उस्ताद ने यह बात पढायी ही नही हम कि "

यह सुनकर बागडसिंह की आँखो मे खून उतर आया। सामने का गाडीवान चब्बा का रहनेवाला नही मालूम होता था, वरना वह उसे आवाज़ ही से फौरन पहचान लेता। वह जरूर किसी और गाँव का रहनेवाला होगा। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह थी कि इस इलाके मे ऐसा कौन माई का लाल है जो बागडसिंह जैसे धाकड को नही जानता और उसकी आवाज़ नही पहचानता !

क्षण भर चुप रहने के बाद बागडसिंह ने गुस्से-भरी आवाज़ मे गुर्राकर

पूछा, "ओए, तेरा नाम क्या है ?"

वह आखें फाड फाडकर सामनेवाले गाड़ीवान को देखने की कोशिश कर रहा था, लेकिन गहरा अँधेरा होने के कारण उसे गाडीवान की शक्ल ठीक तरह से दिखायी नही दे रही थी।

'मेरा नाम चिराग है।'

दूसरी ओर से यह आवाज आयी तो बागडसिंह ने अपनी चमकदार छविवाली लाठी उठाते हुए कहा, "अच्छा तो, भाई, मदान मे उतर आओ! मेरा नाम बागडसिंह है और मैंने तुम्हारे-जस कई चिराग बुझाकर रख छोडे हैं!"

दूसरे आदमी ने अपने हाथ मे थमी हुई लाठी को एक ओर रखते हुए अपने स्थान पर बैठे बैठे उत्तर दिया, 'वल्ले! वल्ले! अरे यार, पहले क्यो नही बताया कि तुम बागडसिंह हो। खामखा इतनी देर से टिर टिर लगा रखी है। लो मैं अपनी बलगाडी लीको से बाहर निकाले लेता हूँ।"

सो यह थी उस इलाके की स्थिति।

बागडसिंह अपने इलाके मे दो कारणो से मशहूर था—एक तो अपने धाकडपन म और दूसरे नम्बरदार काबलसिंह का खास कारिंदा होने के कारण।

बागडसिंह देखने मे बहुत बडा जवान नही था न उसका भारी डील-डौल था। अगर उसम कोई विशेषता थी तो यह कि वह बडा ही हथछुट आदमी था। अपने मालिक का इशारा पाते ही लठ घुमा देना वह अपना कर्तव्य समझता था। बिना झिझक दूसरे पर हमला बोल देना उसकी पुरानी आदत थी। उसकी दूसरी विशेषता यह थी कि उसके हृदय मे दया नाम को भी नही थी या कम से कम किसी पर हमला करते समय उसे दया बिल्कुल नही आती थी। शायद इसका सीधा सा कारण यही था कि लडकपन से ही उसका रहन सहन कुछ इसी किस्म का रहा और उसकी सोहबत भी अण्टाफल लोगो मे रही। लेकिन इसका यह मान भी नही कि उसकी धाक फोकट म ही बढ गयी थी। बदसूरत चेहरेवाला और इकहरे गठे हुए बदन-वाला बागडसिंह लडाई के मौके पर एसी तुतक्ति दिखाता कि देखनेवाले मुह मे उँगलियाँ रख लेते। लाठी तो कई जवान चला लेते थ, लेकिन छवि

का वार इतनी सफाई से करना किसी किसी को ही आता है। देखनेवालों को एक तरफ बागर्डसिह की लाठी से सटी हुई छवि की चमक दिखायी देती और फिर आख झपकते मे ही दुश्मन के पेट की आँतें कूदकर पेट स बाहर निकल आती।

इस समय बागर्डसिह की उम्र चालीस साल के लगभग होगी। आज से अठारह साल पहले उसने काबलासिह की नौकरी की और तब से उसी का वफादार चला आ रहा था। काबलासिह का खास कारिंदा होने की वजह से बागर्डसिह की इज्जत मे चार-चाद लग गये थे। दुनिया जानती थी कि अगर किसी ने बागर्डसिह का बाल भी बाका करने की कोशिश की तो फिर उसे सरदार काबलासिह का मुकाबला करना पडेगा।

काबलासिह न केवल काफी रसूख और पहुचवाला आदमी था, बल्कि वह खुद भी बडे ऊचे डील डौलवाला धाकड आदमी था। इस समय अडतालीस साल की उम्र मे वह हड्डियो और मास का गोया एक पहाड था। आम आदमी की चार आखो के बराबर उसकी एक आख थी। तने हुए बडे घूस की तरह उसकी ठुडडी थी जो दाढी के घने बालो से ढकी हुई थी। लम्बी मूछो के ऊपर उसकी बाज की चोच जैसी नाक बडी रोबदार थी। बागर्डसिह को काबलासिह से अपनी पहली मुलाकात अच्छी तरह याद थी।

जवानी के दिनो मे काबलासिह को शिकार का बहुत शौक था। बाप की लम्बी चौडी जमीदारी थी पसे की कमी नही थी। काबलासिह के पास बदूक भी थी और राइफल भी लेकिन कुत्तो के बिना यह शौक अच्छी तरह पूरा नही हो सकता था। चुनांचे काबलासिह ने बहुत से कुत्ते पाल रखे थे, जिनमे से कुछ तो भारी छाती और पतली कमरवाले शिकारी कुत्ते थे जिन्हे अँगरेजी मे ग्रेहाउण्ड कहते हैं और कुछ कुत्ते डील डौल मे बहुत छोटे थे। इन सबकी देख भाल के लिए उसने एक बूढे साँसी को नौकर रख छोडा था। यह सासी साठ बरस के हेर फेर मे था, लेकिन उसके शरीर मे अब भी काफी ताकत थी। उसका पेट पीठ से लगा था और बदन इस हद तक इकहरा था कि उसकी एक-एक पसली गिनी जा सकती थी। उसका नाम दीनमुहम्मद था। साँसी पजाब की एक जाति होती है। ये लोग अक्सर

खानाबदोश होते हैं। कुत्ते पालने का उन्हें बहुत शौक होता है और इन कुत्तों की मदद से ही वे जंगली बिल्लों का शिकार खेलते हैं। सासी लोग इन बिल्लों को बड़े शौक से खाते हैं।

उन दिनों बागड़सिंह नया नया जवान हुआ था। जवानी की मस्ती तो वैसे भी मशहूर है, लेकिन बागड़सिंह के दिमाग में यह मस्ती बिलकुल खर मस्ती का रूप धारण कर गयी थी। बात-बात में गाली देना छोटे-बड़े की पगड़ी उछालना, बिना कारण ही मरने मारने पर उतर आना, ये थे बागड़सिंह के गुण। एक दिन बूढ़ा दीनमुहम्मद सरदार काबलसिंह के कुत्तों को लिये धूप में खड़ा था। ऐसी ही सर्दियों का मौसम था। कुत्ते रात भर ठिठुरते रहे थे, जब सूर्य निकला तो दीनमुहम्मद उन्हें धूप खिलाने के लिए बाहर ले आया। इतने में बागड़सिंह भी गांव से बाहर निकला और जब वह कुत्तों के पास से गुज़रा तो एकाएक ठिठककर खड़ा हो गया। उसकी नज़र एक खास कुत्ते पर जमी हुई थी। यह न तो शिकारी कुत्ता था और न छोटा कुत्ता था, बल्कि यह खूब घने बालों और बड़े ऊँचे डील डौलवाला कुत्ता था। इस कुत्ते के न केवल गरदन और सिर पर बाल थे, बल्कि उसकी दुम भी खूब झबरी थी, जो ऊपर को उठकर बड़ी शान के साथ कुत्ते की पीठ की ओर घूम गयी थी।

बागड़सिंह ने महसूस किया कि उसकी पगड़ी के नीचे सिर के घने बालों में एक आध जूं सुरसुरा रही है। उसने अपनी एक उँगली पगड़ी में डालकर उस जूं को जहां की-तहां मल देने की कोशिश की और दूसरी ओर नथुने फुलाकर बोला, "क्या, ओए दीनमुहम्मदा! यह कुत्ता कहां से मारा है?"

खूब लम्बे कद के काले रंगवाले दीनमुहम्मद ने अपने भारी पपोटों को हिलाये बिना बागड़सिंह पर एक नज़र डाली और बोला, "ओए, हमने कुत्ता कहाँ से लाना था? ऐसे कुत्ता लाना तो मालिकों का काम है।"

बागड़सिंह ने बेपरवाही से हाथ हिलाकर कहा, "फिट्टे मुंह! अरे यार, बात का सीधा जवाब दे ना!"

"यह कुत्ता भूटान का है।"

भूटान का नाम सुनकर बागड़सिंह का दिमाग चकरा गया। उसने

जल्दी जल्दी आखें झपकाकर अपने से बालिश्त-भर ऊँचे दीनमुहम्मद के चेहरे की ओर देखते हुए पूछा, ओए यह भूटान क्या विलायत मे है ?'

"मेनू नही पता।

यह सुनकर बागर्डसिह ने नाक के रास्ते हवा खीचकर सारा बलगम मुह म जमा किया और फिर बलगम का एक लोदा जमीन पर फेंकते हुए बोला, "ओए दीनमुहम्मदा, तू तो कुत्तो मे रहकर कुत्ता ही हो गया है। तेनू इतना भी नही पता कि भूटान विलायत मे है !'

दीनमुहम्मद को बागर्डसिह की बात बुरी तो लगी, लेकिन वह खून का घूट पीकर रह गया। उसने दबे दब गुस्से के स्वर मे कहा, "जा, ओए सरदारा, अपना काम कर। कही तू भी कुत्ता के पास खडा होकर कुत्ता न बन जाय।"

दरअसल दीनमुहम्मद कहना यह चाहता था कि तू तो कुत्ता म रहे बिना ही कुत्ता बन चुका है। लेकिन ऐसा कहने की उसकी हिम्मत नही हुई क्योकि वह बागर्डसिह की बददिमागी और हाथ की सफाई की मशहूरी सुन चुका था, इसलिए वह इस बला को टाल देना ही उचित समझता था। लेकिन बागर्डसिह टलनेवाला असामी नही था। मालूम होता था कि आज उस भी और कोई काम नही था। वह उस भोटिया कुत्ते को ही देखे जा रहा था।

दीनमुहम्मद न मुह दूसरी तरफ फेर लिया। अब वह बागर्डसिह से कोई और बात बढाना नही चाहता था। बागर्डसिह न दीनमुहम्मद से ध्यान हटाकर कुत्ते से छेड छाड शुरू कर दी। उसने पीछे से कुत्ते की शानदार दुम पर धीरे से हाथ फेरा। इस पर कुत्ता झट अपनी पीठ घुमाकर नाक-ही-नाक मे गुर्राने लगा। तब दीनमुहम्मद न घूमकर देखा और फिर बोला, "बागर्डसिह बाज आ जा ! यह कुत्ता बडा खूनी होता है।'

बागर्डसिह न दीनमुहम्मद की बात पर ध्यान दिय बिना हँसकर कुत्ते पर नजर जमाय रखी और फिर बोला "यार यह भोटिया कुत्ता तो बिलकुल सरदार कावनासिह की तरह ही नजर आता है।'

दीनमुहम्मद ने उकताये हुए स्वर मे कहा, 'जा बीबा ! अपना काम कर। तुम कुत्ते से लेना क्या ?'

वागर्डसिह ने वसी ही उजडड हसी हसते हुए कहा, "दीनमुहम्मदा ! खामखा क्या परेशान होता है। मैं जरा इस कुत्ते की दुम खीचना चाहता हूँ। देखो तो क्या अकडा खडा है !'

अरे अकडा खडा है, तो तेरा क्या लेता है ! तू भी अकडा खडा रह न !

'नहीं यार मैं तो जरा इसकी दुम खीचूगा।"

"अरे बाज आ, कोई भी कुत्ता अपनी दुम खीचना सहन नही कर सकता। और फिर इस कुत्ते न जो पलटकर झपट्टा मार दिया तो पाँचो उँगलिया माफ कर देगा।

'जा जा, यह रोब किसी और पर जमाना। अभी देख, मैं इसकी दुम खीचता हूँ या नही।"

दीनमुहम्मद के ना कहते-कहते वागर्डसिह न कुत्ते की दुम खीच दी। कुत्ते न जो झपट्टा मारा तो वागर्डसिह का हाथ तो बच गया, लेकिन उसके कुरते की आस्तीन कुत्ते के मुह म आ गयी। और एक ही झटके मे कपडे का टुकडा फटकर अलग हो गया।

अब दीनमुहम्मद बोला 'ले चख लिया न मजा ! मैं कहता हूँ, जा, अब भी दफा हो जा।'

लेकिन वागर्डसिह दफा कैसे होता ? अब तो उसके मन मे एक ही बात बैठ गयी कि वह कुत्ते की दुम पकडकर उसे चारो ओर घुमा दे। चुनाँचे साथी के चीखने चिल्लाने के बावजूद उसने कुत्ते की दुम म पकड ही लिया और इसके साथ ही बडी फुर्ती से एक ही झटका देकर कुत्ते को जमीन से उठा लिया और फिर दुम दोनो हाथो म मजबूती से पकडकर उसने अपनी एडियो पर घूमना शुरू किया और साथ ही साथ कुत्ते को भी घुमाने लगा। इस भारी-भरकम कुत्ते को दुम से पकडकर घुमाना कोई आसान बात नही थी ! कुत्ते की तो सारी शेखी किरकिरी हो गयी और वह अपनी इट्टी गिट्टी भूल गया। समझा, न जाने किस बला न पकड घुमाया है। बेचारा घबरा-कर टयाव-टयाव करने लगा।

कुछ लोग दूर खडे खडे यह तमाशा देख रहे थ। नग धडग, छोटे छोटे लडको न उछल उछलकर तालिया पीटनी शुरू कर दी।

अब बागडसिंह कुत्ते को धीरे से धरती पर नहीं रखना चाहता था क्योंकि उसे डर था, कहीं ऐसा न हो कि कुत्ता धरती पर पहुँचते ही उस पर हमला बोल दे। चुनाचे उसने एक दो चक्कर और भी जोर म देकर कुत्ते को छोड दिया। पास ही पानी का जोहड था। कुत्ता पहले तो जोहड के किनारे खडे एक बबूल के पड से टकराया और फिर वहा से सीधा पानी म जा गिरा। पेड से टकराकर उसकी पिछली टाँग पर बडे जोर स चोट लगी और बबूल के कुछ काटे उसके शरीर म चुभ गये। मारे दद के कुत्ता बिलबिला उठा और फिर जब वह पानी मे से टयाव टयाव करता हुआ बाहर निकला तो उसकी सारी शान गायब हो चुकी थी। उठे उठे और फूले फूले उसके लम्बे-लम्बे बाल बदन स चिपक गये थे, जिसके कारण उसका डील डौल भी सिकुडा सा नजर आने लगा था। रही उसकी दुम सो उसे उसने नीचे को घुमाकर अपनी दोना टागो के बीच छिपा लिया था। कहाँ तो कुछ देर पहले उस कुत्ते का एसा रोब था जैस दुनिया म उसके मुकाबल का कोई दूसरा न हो और कहा अब उसकी ऐसी दुगत बन गयी थी कि अगर कोई चूहा भी ललकार दे तो टयाव टयाव बोलकर वहा से भाग निकले।

यह तमाशा दखकर दूर दूर तक खडे हुए लोग गला फाड फाडकर कहकहे लगाने लगे और बच्चो ने तो वह हुडदग मचायी कि तोबा ही भली।

बागडसिंह ने अपनी ढीली पगडी का अतिम सिरा पगडी म स निकालकर उस फिर से पगडी म ठूस लिया। अब उसके मन को शाति मिल गयी थी। उसने बडे गव से गाव के लोगो पर एक नजर दौडायी और एक बार फिर नाक की बलगम को खींचकर मुह मे लाने लगा।

सौंसी दीनमुहम्मद भागता हुआ कुत्ते की ओर बढा। उसन दखा कि कुत्ता एक टाँग म लँगडा रहा था। वहाँ खडे लोगो म से केवल दीनमुहम्मद ही था, जो बेचारा बुरी तरह परेशान हो रहा था। वह जानता था कि काबलसिंह ने यह कुत्ता बडे शौक से मँगवाया था। इसकी टूटी टाँग दखकर सरदार की आँखो म खून उतर आयेगा। काबलसिंह अपन गुस्स के लिए बहुत बदनाम था। लेकिन दीनमुहम्मद यह भी जानता था कि सारा किस्सा सुन लेन क बाद काबलसिंह बागडसिंह को भी नहीं छोडेगा।

इतनी देर म कुछ लोग उनके काफी करीब बढ आये थे। दीनमुहम्मद न आग बरसाती नजरो से बागडसिंह की ओर देखा और बुरी तरह से भल्लाकर बोला, 'बच्चू तुम जो अभी बाछें चीर-चीरकर हँस रहे हो, याद रखो, सरदार काबलासिंह को जब पता चलेगा कि तुमने उसके कुत्ते की यह गत बनायी है तो फिर तुम्हारी भी खैर नही।"

इस पर बागडसिंह न बडी बेपरवाही से सिर उठाया और दायीं बायीं ओर देखते हुए कहा, "ओए, जा, जा! मैं किसी की परवाह नही करता!'

यह सुनकर दीनमुहम्मद उठ खडा हुआ और बागडसिंह के बिलकुल सामने आकर और माथे पर बल डालकर भारी आवाज मे बोला, "बच्चू, जवानी की यह सारी तरग गधे के मूत की तरह बह जायेगी! इस समय इलाके भर मे ऐसा कोई माई का लाल नही जो काबलासिंह का मुकाबला करना तो एक तरफ, उसके बारे म ऐसे लफ्ज भी कह सके जैसे तूने कहे हैं।"

इस पर बागडसिंह ने अपने फूले हुए नथुनो को और भी फुलाकर कहा, "जा, जा! साहसिया, जाकर कुत्ता म बैठ! मरे सामने खडे होकर भूकने स क्या फायदा?"

दीनमुहम्मद को ताव तो बहुत आया, लेकिन वह इतना जानता था कि अब उसने एक बात भी और कही तो बागडसिंह उस पर टूट पडेगा और उसकी मजबूत लेकिन बूढी हड्डियो को चिरचिराकर रख देगा। यह सोचकर वह पीछे हट गया और बागडसिंह बडी शेखी से तहबन्द फड-फडाता वहा से चल दिया।

वहा जो लोग खडे यह तमाशा देख रहे थे वे भी बागडसिंह के शारी-रिक बल और उसकी हिम्मत का लोहा मानते थे, लेकिन इसके साथ वे यह भी जानते थे कि ऊपर को उठनेवाले हर जवान की भी एक सीमा होती है और जिस रोज वह उस सीमा के बाहर कदम रख देता है उसके टखने तोड दिए जाते हैं। इसमे कोई सन्देह नही कि आज बागडसिंह ने अपनी सीमा के बाहर पाव रख दिया था।

कुछ ही देर बाद सासी दीनमुहम्मद काबलासिंह के सामने खडा था। उस समय काबलासिंह अपनी मोटी मोटी, लाल आखें बाहर को निकाले

बादल की तरह गरज-गरजकर सासी को डाँट रहा था, "ओए दीनमुहम्मद, साफ साफ बता कि मेरे भोटिया कुत्ते को हुआ क्या है ? उसकी यह हालत कैसे बनी ? और तू उस समय था कहा ?"

दीनमुहम्मद अभी तक कुछ गोलमाल-सी कर रहा था, क्योंकि वह बागर्डसिंह की दुश्मनी भी मोल नहीं लेना चाहता था, लेकिन इधर उसके मालिक काबलासिंह की आखें आग बरसा रही थी। भला वह यह बात छिपाता भी तो कैसे ? उसने हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज ! सच्ची बात यह है कि यह सारी खराबी बागडसिंह ने की है।'

'बागर्डसिंह कौन ?"

'महाराज ! आपने तो उसका कभी खयाल भी नहीं किया होगा। वह वरियाम कौर का लड़का है।"

"वरियाम कौर ! वही बेवा जो गाव के उस सिरे पर रहती है ? '

'जी, महाराज।'

यह सुनकर काबलासिंह को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह एक हाथ कमर पर रखकर सासी के निकट पहुच गया और भारी स्वर मे बोला, हाँ, हाँ, उस लौण्डे को तो मैं भी जानता हूँ। क्या किया उसने ?

"अजी मैं कुत्तो को धूप खिला रहा था। इतने में बागर्डसिंह गाँव से निकला और उसे न जाने क्या सूझी कि वह भोटिया कुत्ते से खरमस्ती करने लगा। मैंने बहुतेरा मना किया लेकिन उसके सिर पर तो भूत सवार था। उसी ने भोटिया की दुम पकड़कर उसे जमीन से उठा लिया और फिर खूब जोर से चक्कर देकर इस दूर फेंक दिया। कुत्ता ट्याव ट्याँव करता हुआ पहले तो बबूल के पेड़ से टकराया फिर छप्पड में गिर पड़ा। इसी में उसकी टाँग भी टूटी और बदन में काटे भी चुभ गये।

"उसे मालूम नहीं था कि यह मेरा कुत्ता है ?"

'हाँ जी ! यहा ऐसे कुत्ते कौन रखता है ? वह तो खुद ही कह रहा था कि जैसा काबलासिंह है, वैसा ही उसका कुत्ता है।"

"फिर भी हरामी ने इतनी हिम्मत की ?'

'हाँ जी ! गाँव के बहुत से लोग खड़े यह तमाशा देख रहे थे।'

काबलासिंह ने दाँत पीसते हुए पूछा, "तुमने पहले क्यों नहीं बताया ?

इतनी दर स री रो लगा रखी ह ! यह नहीं कहत कि बागडसिह की ही यह नरारत है ! '

'हुजूर ! कमजोर आदमी हर तरह की जोर होता है। वनाय नमक आपका खाता हू, लेकिन उस बदमाश की भी आज-कल एसी धाक बैठी हुई है कि उसके खिलाफ कुछ कहा की मेरी हिम्मत नहीं हुई।'

'ओए दीनमुहम्मदा ! तुम कम-स कम इतना तो कहना था कि मैं ऐसी बदतमीजी सहन नहीं कर सकता ? '

हाँ जी, मैंने यह भी कहा था कि याद रख, यह कुत्ता सरदार बावलासिंह का है ! '

' फिर वह क्या बोला ?

' अब क्या कहूँ ? बदतमीजी की बात है।'

"तू बगटके कह द।

सोमी न जरा झिझककर कहा, वह बोला ए'र बावलासिह मैंने बहुत देखे हैं।"

यह सुनकर बावलासिह एकदम बिफर गया। उसकी मूँछें फडकने लगी। लेकिन वह मारे गुस्स के एक शब्द भी न बोल सका।

इसके बाद सोमी तो वहाँ से चला आया। लेकिन बावलासिह न उसी समय अपने एक खास कारिंद बलकारसिंह को बुलाया और उसके साथ कुछ और आदमी भेजकर बागडसिह की माँ को यह सन्देसा भिजवाया कि अगर बागडसिह दिन ढले से पहले-पहले सरदार बावलासिंह के तबले म न पहुँचा तो कल तक उसके कन्धा से सिर गायब होगा और बिना सिर के धड वरियाम कौर के दरवाजे पर पडा होगा।

जब बलकारसिंह और दूसरे आदमी बागडसिह क घर पर पहुच तो वहा केवल उसकी माँ ही बैठी थी। जब उस यह सन्देश मिला तो बचारी के हाथ पाँव फूल गये। जब लडका घर आया ता माँ ने उससे यह बात कही। यह सुनते ही वह भ्रष्ट हो गया और लगा वाही तबाही बकने। लेकिन माँ न रो-रोकर उस नम्बरदार के यहा जाने क लिए राजी कर ही लिया।

बागडसिह माँ को फटकारकर बोला, "तुम क्या समझती हो कि मैं

काबलासिह मे डरता हूँ ?"

"बटा ! इसमे डरने न डरन की कोई बात नही। बात तो केवल इतनी है कि काबलासिह राजा है, भला हम गरीब उसके मुह कसे आ सक्ते हैं ? '

बागडसिह ने हाथ को झटका देकर कहा, ' धुत ! राजा होगा तो वह अपने घर का। हम भी अपने घर के राजा है।"

' अच्छा अच्छा, जरा उनके तबले तक हो आइयो।"

"जरूर जाऊँगा ! देखूगा, वह मेरा क्या उखाड लेता है !"

"देख, वहा कोई गम सद बात न कहना।"

' यह तो काबलासिह की अपनी मरजी पर है। जो उसने एक कही तो दो सुन भी लेगा। '

मा को बेट के तेवरा स डर तो लग रहा था, लेकिन वह यह भी जानती थी कि अगर उस न भेजा तो भी गाँव म रहना मुश्किल हो जायेगा।

अभी घूप ढली नही थी कि तबेले की कोठरी मे बठे हुए काबलासिह को खबर मिली कि बाहर बागडसिह खडा है। उसने बागडसिह को तबले के अ दर बुलवा लिया।

तबले म एक ही कतार मे तीन बडे बडे कमरे बन थे। कमरो के आगे एक बहुत बडा सेहन था जो बारह फुट ऊँची कच्ची दीवारो से घिरा हुआ था। इस चहारदीवारी म आने के लिए केवल एक दरवाजा था। एक छोटा सा दरवाजा और भी था, जो अलग बनी हुई एक कोठरी म खुलता था। यह कोठरी बहुत छोटी थी, इसम अक्सर सरसा की खली ऊंच ढेर की शक्ल म पडी रहती थी।

उधर स बागडसिह दरवाजे स सहन के अ दर दाखिल हुआ और इधर स काबलासिह बडी कोठरी स निकला।

उन दिनो काबलासिह की उम्र केवल तीस वष की थी। अपने डील-डौल और ऊँचे कद के एतबार से आस-पास क इलाके म भी उसके मुकाबल का कोई और नही था। अपनी नातजुर्बेकारी के कारण बागडसिह दिल मे यही समझता था कि काबलासिह का शरीर यू ही फैला और फूला हुआ है

लेकिन अन्दर से वह खोखला है। यह उसकी भूल थी क्योकि काबलासिंह के शरीर म उस समय हाथी का सा बल और चीते की सी फुरती मौजूद थी।

काबलासिंह साढे छ फुट से भी ऊँचा था। उसे पौने छ फुट से कम बागडसिंह बिलकुल मच्छर-सा दिखायी दिया। यह माना कि बागडसिंह काबलासिंह के मुकाबले मे कुछ नही था, लेकिन इसम भी कोई सन्देह नही कि उसके बदन म भी बिजली कूट-कूटकर भरी हुई थी।

उसकी शक्ल से ही काबलासिंह ने अन्दाजा लगा लिया कि इस उजडड आदमी के मन पर बातचीत का कोई असर न होगा। डाट फटकार या उसके कारिन्दा के हाथा मार पीट का भी बागडसिंह पर कोई असर होने-वाला नही था। काबलासिंह ने इतना समझ लिया कि जब तक वह खुद अपने हाथो से इस छोकरे का घमण्ड नही तोडेगा, तब तक यह उसकी परेशानी का कारण बना रहेगा।

थोडी दर तक दोनो एक दूसरे को देखते रहे। बातचीत बेकार थी।

बागडसिंह अच्छी तरह जानता था कि उसने जान बूझकर काबला-सिंह को उत्तेजित किया है—बिलकुल उसी तरह, जिस तरह उसन उसके भोटिया कुत्ते की दुम खीच डाली थी। काबलासिंह भी जानता था कि जिस तरह बागडसिंह ने उसके कुत्ते की शान किरकिरी कर डाली थी, उसी तरह उसे भी बागडसिंह की शेखी मिट्टी म मिलानी पडेगी, वरना वह घूरना और गुर्राना बन्द नही करेगा।

न्सासी दीनमुहम्मद और कुछ आदमी सेहन के बाहर खडे तिरछी नजरा मे उन दोना की ओर देख रह थे—अब क्या होता है।

उन्होन देखा कि काबलासिंह अपना बाया हाथ बेपरवाही से कमर पर रखे और दाहिना हाथ धीरे धीरे झुलाता हुआ बागडसिंह की ओर बढ रहा है। इस तरह चलने का उसका अपना ही अन्दाज था। बागडसिंह के एक-दम करीब पहुँचकर काबलासिंह एकदम बिजली की तरह बिफरा। उसका झूलता दाया हाथ हवा मे उठा और उसके भारी भरकम पजे का भरपूर थप्पड बागडसिंह के मुह पर पडा। उसकी धमक इतने जोर की थी कि बागडसिंह पाव पर खडा नही रह सका। उसकी टाँगें लडखडा गयी।

काबलासिंह ने दूसरा थप्पड भी जमाने म देर नही की। थप्पड पर-थप्पड चलते गये। बागर्डसिंह मारे गुस्से के थर थर कापने लगा। वह जमीन पर गिर चुका था, उसकी पगडी अपने उठे हुए शमले समेत उसके गले का हार हो रही थी।

उसे ऐसी हालत म छोडकर काबलासिंह दस बारह कदम परे खडा हो गया। उसकी आखो मे घृणा की आग थी। उसका बाया हाथ फिर कमर पर टिका हुआ था और दाहिना बाजू धीरे धीरे झूल रहा था।

अब बागर्डसिंह ज़मीन मे जगली बिल्ले की तरह धीमे धीमे उठा। उसकी तेज़ आखें काबलासिंह के चेहरे पर जमी हुई थी। उसने क्षणभर को भी अपनी आखें नही झपकने दी, फिर वह एकदम उछला और उसने अपने हाथो मे काबलासिंह की गरदन दबोचने की कोशिश की। लेकिन जिस जोर से बागर्डसिंह आगे उछला था, उससे भी दुगने जोर से काबलासिंह का मुक्का लोहे के बडे हथौडे की तरह उसकी नाक पर पडा। इस चोट के पडते ही बागर्डसिंह को अपने दिमाग के अन्दर आखो के आगे नीले-पीले तारे दिखायी देने लगे। उसे महसूस हुआ कि उसकी बत्तीसी मसूढो समेत अपनी जगह स हिल गयी हो। एक बार फिर लडखडाकर वह पीछे को गिरा। अब दरअसल उसके होश गायब हो चुके थे। उसने अन्धे गुस्से के वश मे होकर यू ही अन्धाधुन्ध काबलासिंह पर घूसे चलाने शुरू किये। इस पर काबलासिंह ने हाथ तोल तोलकर उसके दोनो कानो पर बार-बार ऐसे धप रसीद किये कि बागर्डसिंह को लगा, जैसे उसके कानो के परदे फट गये हो।

अब वह अपने दोनो हाथ टेके ज़मीन पर पडा था। उसके सिर के लम्बे और घने बाल खुल गये थे। दाढी और मूछो के बाल नाक से फूटनेवाली नक्सीर से लथपथ हो रहे थे। बाछो से खून रिस रहा था। उसे न तो कोई चीज़ साफ दिखायी दे रही थी और न वह कोई आवाज़ ही साफ तौर से सुन पा रहा था। उसका हलक सूख गया था। मुह से कोई आवाज़ नही निकल पा रही थी।

यह मुसीबत उसकी अपनी लायी हुई थी। काबलासिंह ने तो कभी उसे कोई तकलीफ नही पहुँचायी थी। उसने खुद ही काबलासिंह से छेड छाड

शुरू की, खुद ही कावलासिंह के बेजुबान कुत्ते को दुम से पकड़कर बड़ी बेरहमी से घुमाया और उसकी टाँग तोड़ डाली। दरअसल जवानी के नशे में वह अपने अन्दर इतना बल महसूस कर रहा था कि उसका मन पहाड़ से टकराने के लिए उत्सुक हो उठा था। अब वह पहाड़ से टकरा चुका था। और उसके मन की तसल्ली हो चुकी थी। अब उसे कावलासिंह से कोई नफरत नहीं रही थी। लेकिन कावलासिंह ने उसके लिए जो प्रोग्राम बना रखा था अभी तक वह पूरा नहीं हुआ था।

तबेले के बाहर खड़े कावलासिंह के आदमी यह सारा तमाशा देख रहे थे। उनमें से जिन्होंने पहले भी कावलासिंह को इस तरह क्रोध में आकर लड़ते भिड़ते देखा था, वे भी कसमें खाने लगे कि उन्होंने पहले कभी उसे इतने गुस्से में नहीं देखा था। कावलासिंह ने जब देखा कि वागड़सिंह के अन्दर लड़ने भिड़ने की शक्ति नहीं रही तो उसने आगे बढ़कर वागड़सिंह के लम्बे बाल अपने हाथ की लपेट में लेकर खींचे। वागड़सिंह ने अपने-आपको दर्द से बचाने के लिए दोनों हाथों से कावलासिंह की चौड़ी कलाई को पकड़ लिया। लेकिन उसकी पकड़ बहुत कमजोर थी। वह इकहरे बदन का आदमी था इसलिए दूसरा हाथ भी जमाकर और ज़ोर से पीछे हटकर उसे ऊपर उठाने में काबलासिंह को ज़रा भी दिक्कत नहीं महसूस हुई। तब कावलासिंह ने अपनी एड़ियों पर घूमना शुरू किया उसके साथ ही वागड़सिंह का शरीर भी घूमने लगा। वागड़सिंह में ताकत तो नहीं रह गयी थी फिर भी वह इतना समझ रहा था कि उसके साथ भी वही कार्यवाही की जा रही है, जो उसने भोटिया कुत्ते के साथ की थी।

अंत में दो तीन बड़े ज़ोर के चक्कर देकर जब कावलासिंह ने उसे छोड़ा तो उसका समूचा शरीर दीवार से जा टकराया। टकराते ही वागड़सिंह ने महसूस किया जैसे उसके बदन की नस नस जल उठी है। इस एहसास के साथ ही वह ज़मीन पर गिरा और बेहोश हो गया।

बेहोशी की हालत में ही उसे चारपाई पर डालकर उसके घर पहुँचा दिया गया। वरियाम कौर बेटे की यह हालत देखकर ज़ोर ज़ोर से बैं बैं करके रोने लगी। गाँव के लोगों ने उनके घर से रोने धोने की आवाज़ें सुनीं, तो उन्हें कुछ आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि जब उन्होंने वागड़सिंह को

भोटिया कुत्ते की दुम पकडकर घुमाते देखा था, तभी उन्होने समझ लिया था कि अब इस अडगंग जवान की खैर नही। वह अपनी सीमा फाद गया था।

लेकिन बागर्डसिह मरा नही। वह इतनी जल्दी मरनेवाला भी नही था। हाँ तीन-चार घण्टे तक बेहोश जरूर पडा रहा था।

रात के दस बजे के करीब जब काबलासिह का गुस्सा ठण्डा हुआ तो उसने वलकारसिह को बुलाकर पूछा, "क्यो बलकारया, ओ भूतनी दा मोया कि नही मोया !"

इशारा बागर्डसिह की ओर था। वलकारसिह ने उत्तर दिया, "अजी, अभी तो नही मरा।" फिर बलकार ने गरदन आगे बढाकर पूछा, 'कहिए तो आज रात ही उसे ठिकाने लगा दें ?"

काबलासिह ने उसकी बात सुनी और फिर अपनी लोहे की कुरसी को हटाकर उठ खडा हुआ और भारी स्वर में बोला, "नही ! उनके यहाँ चार पाँच सेर दूध और सेर एक घी पहुँचा दे।"

जब बलकारसिह दरवाजे से बाहर जाने लगा तो काबलासिह ने पीछे से कहा, उसकी मा को समझा देना कि सेर भर दूध खूब गरम करके उसमे पाव भर घी डाल दे और फिर गरमागरम उसे पिला दे।

जब तक बागर्डसिह चारपाई पर पडा रहा, उस काबलासिह के घर से दूध घी और शक्कर का राशन मिलता रहा।

चौथे ही दिन बागर्डसिह चारपाइ से उठ खडा हुआ और अपनी दुखती हुई हड्डिया को धूप खिलाने के लिए अपने घर के बाहर ही धीरे-धीरे टहलने लगा।

चौदह पन्द्रह दिन के बाद बागर्डसिह को अपना शरीर फिर एक बार तिनके की तरह हलका महसूस होने लगा। लेकिन अब उसके दिमाग पर से जवानी के जोश की धूल झड चुकी थी।

उधर भोटिया कुत्ते की टाँग भी ठीक हो गयी। मालूम होता है कि उसकी हड्डी पर केवल चोट ही आयी थी, हड्डी टूटी नही थी।

जब फिर इन दो पट्ठो का सामना हुआ तो उस समय दोनो के दिलो मे एक दूसरे के लिए गहरा सम्मान था।

तब वरियाम कौर आचल सँभालती हुई काबलासिंह के पास गयी और बोली "बागड़सिंह अभी है ही क्या, वह कल का दूध-पीता बच्चा है। वह दुनिया के ऊँच-नीच को क्या समझे ? अब आप उसे माफी देकर अपने पास ही किसी काम पर लगा लें। आवारागर्दी ने ही तो उसका दिमाग खराब कर दिया है।

अब काबलासिंह बोला, "पर, बबे, उसके दिमाग की धूल भी झड़ी या नही झड़ी ?"

वरियाम कौर ने बडी मिस्कीन आवाज़ मे उत्तर दिया, "झड़ गयी, बेटा, झड़ गयी। बहुत अच्छी तरह झड़ गयी!"

यह सुनकर काबलासिंह चुप हो रहा। फिर थोड़ी देर बाद बोला, "अच्छा तो कल उसे मेरे पास भेज देना।"

यह घटना अठारह साल पहले घटी थी और इन अठारह वर्षों मे बागड़सिंह अपने मालिक का वैसा ही वफादार बना रहा, जैसे उसका भोटिया कुत्ता। मालूम होता था, जैसे उनम कभी लडाई हुई ही न हो। काबलासिंह सदा स उसका मालिक था और वह सदा से उसका नौकर। काबलासिंह को ज्यादा बोलने की आदत नहीं थी। वह अपने घर म भी कम ही बोलता था। उसे बोलने की ज़रूरत भी कम महसूस होती थी, क्योंकि उसके नौकर, बच्चे और घर के दूसरे लोग उसे अच्छी तरह समझते थे। वे जानते थे कि उस क्या चीज़ पसन्द है और क्या नही। वह उसके छोटे से छोटे इशारे को भी समझते थे। केवल उसकी बेटी सुरजीत कौर को उससे बिलकुल डर नही लगता था। सुरजीत के भाई बाप से डरते थे, लेकिन सुरजीत नही। बचपन से ही वह बाप की लाडली थी और उसी समय से वह बाप की घनी दाढी और मूछो से खेला करती थी। वह बडी होती गयी, लेकिन बाप से डरना उसने नही सीखा। कोई ऐसा काम भी, जिसे करने से काबलासिंह दूसरा को मना कर चुका हो, सुरजीत बाप स कहकर कर लेती थी या करवा लेती थी।

बडी होने पर सुरजीत की सुन्दरता फूल की खुशबू की तरह फैलकर इलाके भर मे मशहूर होने लगी। वह सचमुच बडी बाकी लडकी थी। वह उतनी लम्बी तो नही थी, जितनी कि काबलासिंह की बेटी को होना चाहिए

था, लेकिन फिर भी उसका कद निकलता हुआ था और उसे किसी चीज़ की कमी नही थी। इसके बावजूद उसका किसी से प्रेम नही हुआ। इसके दो कारण थे—एक तो सुरजीत अपने बाप से कुछ ही कम घमण्डी थी। नातजुर्बेकार लडकी के मन मे घमण्ड उत्पन्न करनेवाली सभी चीज़ें उसे प्राप्त थी। वह सुन्दर थी, धाकड बाप की बेटी थी खाने पीने की कमी नही थी, कभी किसी ने आख उठाकर उसकी ओर देखने की हिम्मत नही की थी, किसी न उस पर रोब नही जमाया था। दूसरा कारण यह था कि अपने गाव और आस-पास के दूसरे गावो मे बहुतरे ऐसे जवान थे, जो उस पर नजर रखते थे लेकिन उनमे से कभी किसी की इतनी हिम्मत नही हुई कि उससे प्रेम जता सके। शायद वे इस इन्तज़ार म थे कि कभी सुरजीत ही कोई इशारा करे। लेकिन सुरजीत किसी को आख तले ही नही लाती थी!

इस गाव म अमीरी का यह मतलब नही था कि अमीर घर की औरतें अकडकर पलग पर बैठी रहे और घर के काम काज न करें, या कपडे धोने के लिए ढवी के छप्पड पर न जायें।

सुरजीत भी लोहे के तमले म कपडे डालकर अपनी सहलियो के साथ कपडे धोने जाया करती थी। हर लडकी का कोई न कोई भेद होता है। इस सम्बन्ध म सहलियो की छेड छाड चलती ही रहती थी। सुरजीत भी अपनी सहेलियो के साथ हसी मज़ाक करती। उनको असली या झूठ मूठ के प्रेमियो के ताने दिये जाते, लेकिन सहेलियाँ कभी सुरजीत स छेड छाड न कर सकी। सखियाँ एक-दूसरे का लिहाज तो नहीं करती, लेकिन सुरजीत का कोई प्रेमी ही नही था झूठ मूठ का भी नहीं। चाहे लडकी को दिलचस्पी न हो, लेकिन अगर फिर भी कोई लडका उसके पीछे घूमे या उसकी ताक झाँक करे तो भी लडकी को इस बात के ताने दिये जा सकते हैं। मगर सुरजीत के बारे में ऐसी भी तो कोई बात नही थी। हाँ, बातो-वाला म और कुछ नही तो कोई लडकी यही कह बठती, 'अरी सुरजो! कभी तो तुझे चाहनवाला भी पैदा होगा!

दूसरी कहती, "अरी, अब पदा थोडे होगा। पैदा तो हो चुका होगा, लेकिन अभी आमना सामना नही हुआ।"

तीसरी कहती, "वैसे छबीले जवानों की कोई कमी तो नहीं, लेकिन न जाने यह मामला खटाई में क्यों पड़ा हुआ है।"

चौथी कहती, "यह ठीक है कि सुरजीत को पसन्द करनेवाले बहुत हैं, लेकिन इसे भी तो कोई पसन्द आना चाहिए।"

पांचवीं कहती, "हां भई, हमारी सुरजो की पसन्द कोई मामूली तो नहीं हो सकती। हम तो इस बात के इन्तज़ार में हैं कि देखें यह पसन्द किसे करती है।"

छठी बोलती, "हां, हां, इसकी पसन्द तो देखने योग्य होगी!"

पहले पहल तो सुरजीत ऐसी बातें सुनकर बहुत बिगड़ी थी, लेकिन अब वह इन बातों को सहन करने लगी थी, बल्कि अब उसे इस तरह की बातों में मजा भी आने लगा था। बुरा मानने की बात ही क्या थी वह भी तो दूसरों से दिल खोलकर छेड़-छाड़ करती थी।

जो कुछ भी हो बहुत से लोग इस बात को जानने के लिए उत्सुक थे कि सुरजीत कब और किसे पसन्द करती है। अगर ऐसा नहीं हुआ तो वही सीधी-सादी बात होगी—यानी बाप कोई लड़का पसन्द कर लेगा, जिससे सुरजीत को चुपचाप शादी करनी पड़ेगी।

बाप को भी बेटी की फिक्र थी लेकिन जाटों में लड़कियों की शादी छोटी उम्र में नहीं होती। बाईस तईस वर्ष तक शादी करना एक आम बात थी। और सुरजीत तो अभी अठारह वर्ष की ही थी। काबलासिंह ने अभी ज़ोर शोर से लड़के की तलाश आरम्भ तो नहीं की थी लेकिन उसके मन में यह बात थी ज़रूर। अगर उस समय भी उसे मन-पसन्द लड़का मिल जाता तो वह बेटी की शादी उसी उम्र में कर देता।

यह था इस गाँव का हाल!

यहाँ का सबसे धाकड़ आदमी काबलासिंह था, लेकिन काबलासिंह स्वयं किसी किस्म के झगड़े में कम ही पड़ता था। इन कामों के लिए उसने बागड़सिंह को रख छोड़ा था। अगर काबलासिंह ने बागड़सिंह को अपना खास कारिंदा न बना लिया होता तो वह बेचारा ज़रूर अब तक किसी लड़ाई झगड़े में मारा गया होता या चोरी डाके के इलज़ाम में जेल में पड़ा सड़ रहा होता, या फिर यह भी हो सकता है कि किसी को कत्ल करने के

जुम म फाँसी पा गया होता। लेकिन यह उसकी खुशकिस्मती थी कि उसे काबलासिंह जैसा मालिक मिल गया। बाज मौका पर काबलासिंह का एस आदमी की जरूरत होती थी जो बेजिगरी से लड सकता हो, जरूरत पडने पर दूसरे का गला भी काट सकता हो। वागर्डसिंह हर आजमाइश म पूरा उतरा था। इधर वागर्डसिंह को भी एस आदमी की जरूरत थी जो मुसीबत पड जाने पर उसकी पीठ पर हाथ रख सके और अगर उस जेल जाना पडे तो उसके बीवी-बच्चो को खर्चा पहुँचा सके।

यह सब कुछ होत हुए भी गाँव के या इलाके के किसी आदमी पर कोई ज्यादती नही होती थी। दूसरो के लिए बस इतना ही समझ लना ही काफी था कि वह अपने स्थान को पहचानें और काबलासिंह और उसके कारिंदो की कार्यवाहियो पर उँगली न उठाये। इस मामले म चब्बा और इर्द गिर्द के गाँवो के लोग काफी सूझ-बूझ स काम लेत थे। नतीजा यह था, जैसे कि पुरानी कहावत चली आती है। शेर और बकरी एक ही घाट पर पानी पीते थे। शेर को इस बात पर कोई एतराज नही था बशर्ते बकरी अपने आपको बकरी ही समझे शेर नही! जिस दिन उसने अपन आपको शेर समझ लिया, उस दिन वह बकरी की हैसियत से भी जिन्दा नही रह सकेगी। यही एक अटल कानून था, जसे पत्थर पर लकीर।

चब्बा एक ऊँची जगह पर बसा हुआ था। ऊँची जगह स मतलब पहाडी नही, हाँ इसे टीला जरूर कह सकते हैं। यू लगता था, जैस सैकडा साल पहले यहा कोई गाव बसा था फिर किसी कारण वह वीरान होकर बरबाद हो गया। फिर कुछ समय बाद लोगो को इसे बसाने का खयाल आया। उन्होंने फिर से उस पर मकान बनाये। इस तरह न जाने कितनी बार यह गाव मिट्टी म मिला और कितनी बार फिर से बसा। इसके बारे मे कई कहानियाँ सुनने मे आती थी।

जब किसी स्थान के बारे मे कुछ बातें मशहूर हो जाती है तो उस जगह या उस गाव का एक खास व्यक्तित्व बन जाता है। जब कभी लोग उस स्थान का नाम लेते तो उसके साथ ही उनके दिमाग मे कई और चित्र भी उभर आते। चब्बा ऐसा ही एक गाव था। जिन्होन उसके बार मे कहानिया सुन रखी थी, उन्ह दूर स वह कच्चे मकाना का अम्बार मात्र नही दिखायी

देता था, बल्कि य लगता था, जैसे वह गाव भी दूसर जीवा की तरह सास लेता है, हँसता है और बोलता है, गाता है और रोता है।

जहा चब्बा अपनी धाकडबाजी के लिए मशहूर था, वहा वह अपने सेवाभाव के लिए भी प्रसिद्ध था—गरमी के मौसम म बडे रास्त के किनारे बरगद की ठण्डी छाव-तले एक साफ सुथरा रहट रूँ-रूँ करता हुआ चालू रहता। इसके ओलू के पास गाढे मटठे का एक बहुत बडा मटका पडा रहता था। मटके का मुह कपडे से बँधा रहता और उसके ऊपर कांसे का एक बडा सा जगमगाता कटोरा पडा रहता, जिसे छन्ना कहा जाता था। जो थका हारा मुसाफिर वहाँ पहुँचता, वह छने मे थोडी सी गाढी लस्सी डाल लेता और फिर उसमे कुएँ का ताज़ा ठण्डा पानी मिलाकर उसे भर लेता और अपने सूखे हाठो से लगा लेता। पानी पी लेने के बाद वह ओलू मे से साफ सुथरी मिट्टी लेकर छने को अच्छी तरह मांज धोकर ज्यो का-त्यो मटके पर बँधे हुए कपडे के ऊपर रख देता। अगर मुसाफिर भूखा होता तो वह रहट की गद्दी पर बैठे लडके से कह देता और वह लडका दौडकर गाव से रोटिया और सब्जी या दाल और अचार आदि ले आता।

अब शाम हो रही थी। खेतो म से तिलियर कबूतर, बटेर आदि कीडे-मकोडे अनाज चुगना छोडकर अपन बसेरो को चले गये। कौओ ने काव-काँव करना बन्द कर दिया। किसान और दूसरे काम करनवाले लोग थके-हार क़दमा से गाव की ओर बढने लगे। कही-कही खेतो मे घडें बनी हुई हैं। खेता मे रखे भूसे के काफी लम्बे और ऊँचे ढेर को गारे से लेप दिया जाता था, इसी को धड कहते थे। सूर्यास्त के बाद मद्धिम प्रकाश म ये घडें कछुओ की तरह दिखायी देने लगी। गाव के मकानो स धुए की लकीरें उठने लगी थोडी देर मे इसी धुएँ की तरह के अँधरे ने सारे गाँव को अपनी लपेट मे ले लिया।

एक

यू तो सुरजीत की बहुत-सी सहेलियाँ थी, लेकिन फातिमा उसकी सबसे चहती सहेली थी।

फातिमा नाक-नक्शे की अच्छी थी, लेकिन सबसे बड़ी बात यह थी कि उसका रग खूब गोरा था—सुरजीत से भी कही ज्यादा गोरा। उसे इस पर बहुत नाज भी था, क्योकि गाँव म कोई लडकी इस मामले मे उससे बढ़कर न थी। उसे देखकर मौका पाते ही नौजवान गुनगुनाने लगते

रब्बा! गोरा रग न किसे दा होवे,
सारा पिण्ड (गाँव) वैर प गया।

फातिमा को बनाव सिगार से कोई दिलचस्पी नही थी। उसके सिर के बाल आपस मे गुथे रहते थे। उन्हे वह जुम्मे के जुम्मे धोती और फिर कभी तेल लगाती और कभी न लगाती। अक्सर बिना तेल लगाये ही वह इनमे कघी करने लगती जिसका नतीजा यह होता कि उलझे हुए बाल कघी से उखड जाते। अपनी इसी मूर्खता के कारण उसने अपने बाल खासे हलके कर लिये थे। अलबत्ता वह मुह दिन मे कई बार धोती। नहाने से उसे दिलचस्पी नही थी। बस, चेहरे की टिकिया चमकती रहे, बाकी शरीर से उसे कोई मतलब नही था। इसीलिए चमकते हुए चेहरे के मुकाबले मे गरदन का मैलापन दिखायी देने लगता तो वह गीले कपडे से उसे पोछ लेती। चौबीस घण्टो मे एक बार वह पाँव भी जरूर धोती थी, टूटे घडे की ठीकरी से एडियाँ रगडती—गोया ऊपर से मुह और नीचे से पाव दमकते रहे। बस इससे ज्यादा फातिमा और कुछ नही चाहती थी। सहेलियो को उसकी इस आदत का अच्छी तरह पता था, क्योकि जब कभी वे फातिमा की कलाई पकडकर नहाने के लिए उसे छप्पड की ओर खीचती या औलू तक ले जाना चाहती तो वह झटके से कलाई छुडा लेती और नाक चढाकर कहती "ना, बाबा! हमे तो सरदी लगती है!"

इस पर वे कहती 'हाँ, भई, इसे नहाने का क्या फायदा? यू ही चाद की तरह चमकती रहती है! यही तो गोरे रग का फायदा है!'

फातिमा सहेलियो के इस ताने को बडी खुशी से सहन कर लेती, क्योकि

इसम उसकी तारीफ का पहलू भी तो निकलना था ! धीरे-धीरे उसके मन म यह पक्का खयाल बैठ गया कि गोरे रगवालो को नहाने धोने की कोई जरूरत ही नही। देखने म यह बात ठीक भी थी, क्योकि अपने उलझे हुए बालो और मुडी तुडी चुटिया के बावजूद वह देखने म भली लगती थी बल्कि अच्छी-खासी प्यारी भी लगती थी।

गाँव के अन्दर रहकर प्यार व मुहब्बत के खेल मेलन की ज्यादा आज़ादी तो नही होती और न ज्यादा मौके ही मिलते हैं, लेकिन इन सीमाओ के अन्दर रहकर भी फातिमा को जितना मौका मिलता, उतना आनन्द वह ले लेती। आनन्द लेन का मतलब केवल यह है कि गली मे आते जाते कभी किसी युवक म टकराते टकराते बच गयी, या किसी युवक पर इतना रोब पडा कि बेचारा एक ही जगह खडे का खडा रह गया और यह अपनी मस्ती मे कुछ शरमायी सी ठुमक ठुमक करती पास से गुजर गयी या फिर खेत की मड पर चलत चलत किसी दिलफेंक न तन के गोरे रग पर कोई बोल गुनगुना दिया तो फातिमा ने ऊपर मे नाक चढायी, लेकिन मन मे लड्डू फूटने लगे। एम मौका पर दिल इतने जोर मे उछलता कि घर पहुँचकर भी जोर जोर स धकधक किय जाता।

कहन का मतलब यह कि फातिमा न चचल और दिलफेंक तबीयत पायी थी। मगर फिर भी किसी मद ने उस उँगली से छुआ तक नही था। फातिमा भी बस इतनी ही हिम्मत थी कि दूर ही दूर स चटखारे ले लेती। जो कही अकेले मे किसी मद से मुठभेड हो जाय तो बचारी की चीखें निकल जायें। अपनी सहेलियो के बीच वह सबसे बढ बढकर बातें बनाती। ऐसी-एसी बशरमी की बातें कह जाती कि दूसरी लडकिया दातो-तले उँगलिया दबा लेती। फातिमा को इसमे भी मज़ा आता था!

सुरजीत और फातिमा की गाढी छनती थी। फातिमा जितनी बेबाक थी सुरजीत उतनी ही शरमीली थी। लेकिन शरमीली होन का यह मतलब नहा कि सुरजीत को प्रेम-कहानिया सुनने मे मजा नही आता था। झूठ मूठ की शरम के बाद वह अक्सर बडे ध्यान से फातिमा की बातें सुना करती। फातिमा के पास सुनाने को बहुत से किस्मे थे। उन किस्सों म कोई खास बात भी नही होती थी लेकिन ये बेचारी भोली भाली मासूम लडकिया

इसी म बहुतेरा आनन्द पा लेती थी। फातिमा की कहानियाँ तो कुछ कमी होती—कदाचित वह अपनी नाक पर उँगली जमाकर गुनाही हाठवाला छोटा सा मुह यू खोलती, 'उई अल्लाह! जानती हो क्या हुआ आज ?'

यह कहते-कहते फातिमा का दूसरा हाथ उठता और उसकी पतली-पतली गोरी-गोरी पाँचो उँगलियाँ सीने पर जा टिकती।

सुरजीत गरदन आगे बढाकर पूछती, 'क्या हुआ, भई ?'

"हे परवरदिगार! मेरा दिल तो अब भी धडक ही जा रहा है!'

"अरी कुछ बतायगी भी!"

इस पर फातिमा ज़ोर-ज़ोर स गहरी साँसें लेने लगती और फिर कहती, "ठहरो, भई! जरा दम तो लेन दो!"

यह कहकर वह दायें बायें झाँकने लगती कि कहीं कोई बैठने की जगह मिल जाय। आखिर वह सबस परे हटकर अलग जा बैठती। सुरजीत उसी उत्सुकता स फिर पूछती, हाँ, तो अच्छी फातिमा! बताओ तो सही कि क्या हुआ ?

पहले तो फातिमा थूक ऐसे निगलती जैसे पूरे-का-पूरा लडडू गल स नीचे उतार रही हो और फिर आँखो की पुतलियाँ यू घुमाती जैसे किसी पहाड से टक्कर लेकर आ रही हो। कोई भी बात सुनाने से पहले फातिमा इस किस्म की ऐक्टिंग जरूर करती थी। देर तक चुप्पी छायी रहती। आखिर जब फातिमा देखती कि अब सुननेवाली बिलकुल बचैन हो उठी है तो उस महान दुघटना का भाँडा यू फोडती, "अरी! आज फिर वह मिला था!

'वह कौन ?'

"अरी वही—सुलतान!'

"अच्छा! क्या कहता था ?'

"कहता तो कुछ भी नही था।"

"तो क्या तुम्हे छूने की कोशिश की उसन ?"

"नही तो।'

तो क्या तुमको देखकर गुनगुनाने लगा ?"

"अजी कुछ भी नही! ऐसी तो कुछ भी बात नही हुई।'

अब सुननेवालो को ख्वाह म ख्वाह अजीब सा लगने लगता कि आखिर

जब यह सब कुछ नही हुआ तो फिर हुआ क्या ?

लेकिन फातिमा एक खोखली सी घटना मे भी रग भरना खूब जानती था। वह अपनी सूरत ज्यो-की-त्यो बनाये रखती और फिर कहती, "वह जो है ना ! सुलतान ! आज फिर उसी गली से आ रहा था, जिस गली स मैं जा रही थी।'

'लेकिन यह भी ता हो सकता है कि तुम्ही उस गली से जा रही होगी, जिस गली से वह आ रहा था ?"

इस पर फातिमा रूठकर मुह दूसरी ओर कर लेती, फिर क्षणभर म बिना मनाये ही मान जाती और खुद ही बात आगे बढाती, "देखो तो सही ! न जाने उसे कैसे पता चल जाता है कि मैं आ रही हूँ ! जिधर स जाऊँ, वह आगे से आन टकरता है।"

"टकराता है ?"

"मेरा मतलब यह है कि आगे ही से मिल जाता है ।'

"और फिर ?"

'फिर क्या ? चुपके से मेरे पास से गुज़र जाता है।"

"तब तुम्हारा क्या बिगडता है ?"

"अरी, बिगडना क्या है ? लेकिन सोचो ना ! वह रोज़ कही-न कही मिल ही जाता है।"

"गाँव म कुल चार छ तो गलिया ही हैं। अगर वह मिल भी जाये तो इसमे हैरानी की क्या बात है ?'

'मेर अल्लाह ! तुम कहती हो, हैरानी की क्या बात है ? मैं कहती हूँ कि उसे देखते ही मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर स धडकन लगता है। और जब वह बिलकुल पास से गुज़रता है तो दिल इतन ज़ोर से धडकना है कि बाज़ वक्त तो मुझे यू लगता है, जैसे मेरे दिल की धक धक को आवाज़ वह भी ज़रूर सुन रहा होगा।'

इसमे घबरान की कोई बात नही। अगर तुम्हारा दिल इसी ज़ोर स धडकता रहा तो एक न एक रोज़ वह सुन ही लेगा!'

'हटाओ जी ! खुदा न करे कभी कोई एसी-वैसी बात हो गयी तो मैं कही की न रहूँगी !"

"और यही मैं चाहे रहा या न रहो लेकिन कम से कम अपने सुलतान के मन में तो पक्का ठिकाना बना ही लोगी।"

"धुत!" फातिमा उसे मारने को दौड़ती

एक रोज देवी के छप्पड़ पर लड़कियों की महफिल जमी हुई थी। दोपहर का समय था। कुछ लड़कियाँ घर से खाना सा आयी थी, कुछ का वहीं पहुंच गया था। अधिकतर लड़कियां ने अपने सारे कपड़े धो डाले थे। कपड़े सूखने को डालकर वे आराम से गप्पें लड़ा सकती थी।

यू तो वहाँ मेला सा लगा हुआ था। बहुत सी औरतें वहाँ पहुँची हुई थी। लेकिन असली रौनक उन लड़कियों के कारण ही थी, जिनके बोलने की आवाजों और रंगीन कहकहों से सारा वातावरण गूंज रहा था। इस महफिल में एक बहुत बड़ी कमी थी, वह यह कि आज अभी तक फातिमा नहीं पहुँची थी।

आखिर काफी इंतजार के बाद गाँव की ओर से फातिमा लटकती-मटकती आती दिखायी दी। जब वह करीब पहुँची तो साफ नजर आ रहा था कि वह बहुत परेशान थी। सहेलियों ने देर से आने का कारण पूछा तो वह टाल मटोल करने लगी।

सुरजीत फौरन समझ गयी कि आज दाल में कुछ काला है, क्योंकि फातिमा कुछ बदली-बदली-सी दिखायी देती थी। इस पर सुरजीत फौरन उठी और सबसे बोली, "हटाओ जी! बेचारी को क्यों परेशान करती हो?"

यह कहकर उसने फातिमा का बाजू थामा और उसे सबसे अलग ले गयी। दूसरी लड़कियाँ अपनी बातों में मगन हो गयी, क्योंकि वे जानती थी कि ये दोनों अकेली बैठकर खुसर फुसर करेंगी।

अलग जाते ही सुरजीत ने फातिमा की कमर में अपनी कोहनी का टहोका दिया। फातिमा तो जैसे पहले से ही तैयार थी। जरा-सा धक्का लगते ही वह जान बूझकर लड़खड़ायी और घास पर जा गिरी। सुरजीत भी उसके पास ही गिरकर बैठ गयी और उसका बाजू झिंझोड़कर बोली,

"क्या री ! आज फिर मिला था ?"

फातिमा ने बडी भोली बनकर पूछा, "कौन ?"

"जरी बस, तू उधर ही को जा रही होगी, जिधर से वह आ रहा होगा "

फातिमा ने झूठ-मूठ विगडकर कहा, "लेकिन कौन ?"

"अरे, वही तुम्हारा सुलतान ?"

"मेरा क्यो ?"

'अरी, तुम्हारा न होता तो तुम हर रोज़ आगे से उसे क्या मिलती ?"

'मैं थोडे ही मिलती हूँ उससे।"

"अच्छा न सही, वही मिलता है तुझे। लेकिन कोई कारण तो होगा जो वह तेरे पीछे हाथ धोकर पडा है।"

'भई, मैं अब किसी के मन का हाल क्या जानू ?"

"अच्छा यह तो बता कि आज वह मिला तो था ना ?"

"हा," यह कहकर फातिमा ने एकदम सुरजीत की आखो मे-आखें डाल दी, और फिर शरमाकर सिर झुकाते हुए बोली, "लेकिन तुम्हे कैसे मालूम ?"

"मैं तुम्हारी शक्ल से पहचान लेती हूँ। जिस दिन तुम उसे मिलकर आती हो, उस दिन तुम्हारे रग ढग और ही होते हैं।"

"तुम बडी खराब लडकी हो !"

"हा, मैं तो खराब लडकी हूँ। अच्छी तो वह है, जिसे गली मे हर रोज़ अपना सुलतान मिल जाता है !"

"देखो, सुरजी, खामखा हमे छेडो नही !"

"लेकिन, प्यारी फत्तो, इस बात को छिपाने से क्या फायदा ? क्या तुम समझती हो कि वह बिना किसी कारण के ही तुम्हे मिल जाता है ? न जाने कितनी देर तक वह तुम्हारे इतजार मे खडा रहता होगा तब जाकर तुम्हारे दर्शन पाता होगा !"

यह सुनकर फातिमा कुछ देर के लिए चुप हो गयी। मालूम होता था, वह मन ही मन मे कुछ सोच रही हो, फिर एकाएक उसकी आखो मे शरारत नाच उठी। बोली 'तुम जो दूसरो का आपस मे प्रेम का नाता जोडती

फिरती हो, खुद अपना नाता किसी से क्यो नही जोडती ?"

सुरजीत ने झूठ मूठ थप्पड मारने के अन्दाज से हाथ उठाया और गुस्सा दिखाते हुए बोली "फिर वही बात ? देख फत्ती ! कहे देती हूँ, अगर तू अपनी इन बातो से बाज न आयी तो याद रखियो ! तेरी चोटी पकडकर ऐसा घुमाऊँगी कि तू अपनी नानी को पुकार उठेगी !"

फातिमा ने सुरजीत के गाल पर हल्की सी थपकी देते हुए कहा, 'मुझे सब मजूर है। चाहे मेरी चोटी घुमाओ, चाहे मुझे मुसली से मारो, लेकिन कम से-कम किसी से दिल तो लगा लो !"

"मैं पहले ही जानती थी कि तुम अन्दर से भोली नही हो। और फिर प्रेम के तो सारे ग्रन्थ पढी हुई हो। वाह ! कैसी भोली बनकर सुलतान की शिकायतें करती थी ! लेकिन असली बात क्या है, अब मैं समझती हूँ।'

'क्या है असली बात ?'

'तूने खुद ही तो इशारो इशारो से उस बेचारे भोले भाले को उलटे रास्ते पर डाल दिया है।

"वाह वाह ! अगर कोई आदमी किसी लडकी से प्यार करने लगे तो इसका यह मतलब थोडा है कि वह उलटे रास्ते पर पड गया ! यह तो इस ससार मे सदा से चला आया है---रांझा हीर की मुहब्बत मे फँसा, महिवाल साहनी के पीछे बरबाद हुआ, पुनू सस्सी के प्रेम मे फना हो गया

'और अब हमारी फातिमा रानी बेचारे सुलतान को बरबाद करने पर तुली हुई है !

फातिमा ने गहरी सास भरकर उत्तर दिया, "अरी तुम क्या जानो, इस बरबाद करने और बरबाद होने मे क्या मजा है !'

सुरजीत ने जल्दी से सिर घुमाकर अपनी सखी की आखो मे आखें डाल दी और कुछ शरारत और कुछ गम्भीरता के मिले-जुले स्वर मे पूछा "क्या मज़ा है इसमे ?'

"सुरजो रानी, मैंने तो कह दिया है कि इसका मजा चखने से ही पता चलेगा ! किसी को बरबाद करने की ठान लो एक बार मन मे !'

फातिमा को आशा थी कि इस बात पर सुरजीत जरूर उसकी चोटी खीच डालेगी, लेकिन ऐसा नही हुआ, बल्कि सुरजीत ने कुछ शरमाकर

मुह दूसरी और फेर लिया ओर धीमे से बोली, "लेकिन यह तो कहो, किसे बरवाद करना होगा ?'

यह सुनकर फातिमा उछल पडी और पीछे से ही सुरजीत के कधे पर ठुड्डी टिकाकर बोली, "अजी, तुम जिसे चाहो, उसे ही बरवाद कर डालो।'

यह सुनकर सुरजीत मुंह से तो चुप रही, लेकिन सांस जोर जोर से चलने लगी। उसने अपना निचला होठ दांता-तले दवा लिया और धीरे-धीरे उसे जो छोडा तो होठ की लाली मे ऐसी जगमगाहट उत्पन्न हुई, जसे उसे आग के गोला मे डालकर निकाल लिया गया हो।

फातिमा ने उसकी यह हालत देखी तो बोली, "तुम यह सोच रही हो न कि कायवाही से पहले इस बात का फैसला तो होना चाहिए कि आखिर किस पर यह कायवाही की जाये ? दूसरे शब्दा मे यह कि अपना शिकार कौन हो।"

चलते चलते दोना सहेलिया थोडी देर के लिए रुक गयी थी। फातिमा की इस बात पर सुरजीत ने फिर कदम आगे वढा दिया।

एकाएक फातिमा ने चुटकी बजाकर कहा, "हा, खूब याद आया। मेरे विचार मे थोडे ही समय मे हमे वडा अच्छा मौका मिलनेवाला है।"

'मौका ?" सुरजीत ने अपनी वडी वडी आखो को और भी फैलाकर उसकी ओर उचटती नजरा से देखते हुए पूछा।

"हा अब बैसाखी आ रही है ना। हम लोग तो अब की रावी पार चलेंगे। तुम्हारे पिताजी का भी यही खयाल है कि अब की वैसाखी रावी-पार शेखूपुरा के ननकाना साहव के गुरुद्वारे मे मनायी जाये।"

"तुम्हे मेरी वेब (मा) से पता चला होगा ?'

"हाँ, वही तो कह रही थी।'

"पिताजी का इरादा है कि वहा आठ-दस दिन तक रहा जाये। हम तो अपना तम्बू भी ले जायेंगे।'

"लेकिन जो काम तुम्हे करना है, वह तम्बू मे वैठकर थोडे ही होगा।"

शैतान कही की। बात खोलकर कह ना।

"अजी, बात तो खुली हुई है। हाँ, यूँ कहो कि तुम मजा लेने के लिए मेरे ही मुह से कहलवाना चाहती हो।"

"धुत।"

"हाँ तो, सुरजो रानी बैसाखी के मेले म देखना, कैसे कैसे बाँके जवान आयेंगे—एक-से-एक बढकर। और फिर पार के इलाके के जवान तो ऐसे सुदर होते हैं कि बस देखते ही रहो।"

सुरजीत मन ही मन म खुश हो, लेकिन ऊपर से भवो पर बल डालकर, नाक पर उँगली रखते हुए बोली, "वाह गुरु! वाह गुरु! सच, फातिमा, तुम कैसी शैतान हो! बेशरमी की बातें कैसे फर फर किये जा रही हो! लडकियाँ तो क्या लडके भी ऐसी बेशरमी की बात मुह से न बोलते होंगे।'

"जो बात मन मे हो, वह जबान पर आ जाये तो इसम बुराई की क्या बात है! इसमे बेशरमी कैसी? सच तो यह है कि मन मे तुम्हारे भी यही कुछ है, लेकिन तुम उसे दबाकर मुह से कुछ नही कहती, सो शरीफ बनी हुई हो। और हम ईमानदारी से मन की बात मुह से कह देते हैं तो बुरे बनते हैं।"

"सच, तुम्हे तो वकील बनना चाहिए था! अगर तुम लडका होती तो जरूर वकील ही बनती।'

"वकालत की बात छोडो, अब तो देखना यह है कि हम दोनो ही लडकिया हैं और हम वही कुछ करना है, जो लडकियाँ कर सकती हैं। कहो, मजूर?"

सुरजीत झेंप गयी। बोली, "भई, अब तो तुम हमारी उस्ताद ठहरी, जो चाहो, सो करो।"

"बस, तो फिर यही बात तय रही। मेले मे हम तुम्हारा किसी-न किसी से प्रेम का नाता जोड ही देंगे।"

सुरजीत ने दोनो हाथो से चेहरा छिपा लिया और दो चार कदम भागकर एक पेड के साये-तले जा खडी हुई। साया बिलकुल नाम ही को था, क्योंकि आकाश मे बादल छाये थे। लग यू रहा था, जसे जमीन की धूल उठकर मँडरा रही हो।

अब वे गुरुद्वारे के निकट पहुच चुकी थी। फातिमा ने फुदककर कहा "आओ चलो ग्रन्थीजी की औरत से बातें करें।'

"अब तो कुछ मन नही हो रहा।"

'बस दो घडी उनकी बातें सुन लोगी तो तबीयत ऐसी हरी हो जायगी कि तुम्हारा जी चाहेगा कि सारा दिन उन्ही की बातें सुनती रहो।

"क्यो ऐसी क्या खास बात है ?"

"अजी बडी लच्छेदार बातें करती हैं। अपने समय म वह भी बडी इश्कबाज थी। अब तक उन्ही बातो को चटखारे ले-लेकर दोहराती है। न जाने क्या नौजवान लडकियो को देखकर तो उनका दिल बिलकुल ही काबू स बाहर हो जाता है। एसे एस किस्से सुनाती हैं कि पूछो मत महसूस होने लगता है कि जब भाभी जवान रही होगी, तो दुनिया म क्यामत आ गयी होगी। कही उनके रास्ते म बडे बडे छल छबीले जवान आखें बिछा रहे होग कही उनके कारण आपस म लडाई हो रही होगी, सिर फट गये होगे कभी किसी ने कृपाण से दूसरे की गरदन काट डाली होगी यह सब कुछ हमारी लक्ष्मी भाभी के कारण "

इसम नयी बात क्या है ?

'नयी बात बस सुनाने के ढग म है। जरा लक्ष्मी भाभी की बातें भी एक बार सुन डालो।

मरा मन तो नही है लेकिन तुम कहती हो तो चलत हैं।'

'देखो जी हमारे सामने ऐसी बातें मत करो।'

फिर दोना सहेलिया ने एक-दूसरी की बाह म बाह डालकर गुरुद्वारे-वाली कच्ची सडक पर नाचते हुए कदमो स बढना शुरू किया।

दायें हाथ को गुरुद्वारे का बाडा था, जिसमे गुरद्वारे के रहट का ऊँट और खेत जोतनवाले दो बैल बँधे रहते थे। ग्रन्थीजी की एक मरियल-सी मस भी थी, जो मुश्किल स ढाई सर दूध देती। काटदार बाडे पर लौकी की कुछ बलें चढी हुई थी, जिनस चन्द छोटी बडी लौकियाँ बढगे अन्दाज स लटक रही थी।

चलत चलत फातिमा ने झपट्टा मारकर एक लौकी खीच ली। वह शाखा स टूटी नही, खिचकर और नीचे को लटकन लगी।

'यह क्या बदतमीजी है ? तुम शरारत से बाज नही आती !" सुरजीत ने माथे पर बल डालकर उसे डांटा और फिर अपनी बात जारी रखी, "वह देखो, लक्ष्मी भाभी कैसे मजे म रगदार पीढी पर बठी हैं ! सामने चरखा है और वह उसे घू-घू चलाये जा रही हैं।"

'हाय अल्ला ! मैंने तो उन्हे देखा ही नही, वरना मैं लौकी को हाथ भी न लगाती। शुक्र है उन्होंने यह हरकत करते नही देखा, वरना डाट-डाटकर मेरा हुलिया खराब कर देनी।"

लक्ष्मी भाभी अब बूढी हो चली थी। सर के बाल पक गये थे। ठुड्डी पर भी दो-तीन सफेद बालो की दाढी निकल आयी थी। रग गोरा चिट्टा। नाक नक्शे से लगता था कि अपने समय म सुन्दर रही होगी। अब तो बेचारी की आखो मे मोतियाबिन्द उतर आया था। अभी इसका असर गहरा नही था इसीलिए वह कुछ न-कुछ देख-भाल लेती थी। हा, सुई म तागा डालना होता तो आस-पास खेलते हुए किसी बच्चे को बुला लेती।

फातिमा और सुरजीत उनके करीब पहुची। फातिमा ने सिक्खो की तरह दोनो हाथ जोडकर कहा "सतसिरी अकाल, भाभी !"

'सतसिरी अकाल ! कहते कहते लक्ष्मी भाभी ने आखें ऊपर उठायी। ठीक तरह से पहचान नही पायी तो माथे पर हाथ रखकर आखो पर छाव करती हुई बोली, "अरी, जरा आगे आओ ! मैं इतनी दूर से पहचान नही पा रही।"

यह सुनकर वे दोनो बढकर बिलकुल निकट जा खडी हुइ। फातिमा ने पतली आवाज लेकिन जरा ऊँचे स्वर म कहा भाभी यह हम हैं— फातिमा और यह सुरजीत।

'आओ, आओ ! कहो, कैसे आना हुआ ? मैं तो अब दूर से किसी को पहचान नही पाती।

"अजी, आखो से नही पहचानती तो क्या हुआ, आवाज तो पहचानती हैं !

हाँ वही मैं कहूँ कि आवाज जानी पहचानी मालूम होती है। कहो, लडकियो इधर कसे आना हुआ ?

"हम तो छप्पड पर आये थे। काम से फुरसत मिली तो सोचा, चलें भाभी के दर्शन कर लें।"

"धन्य बाबा नानक! तुम्हें अपनी बुढ़िया भाभी की याद तो आयी।"

फातिमा बोली, "अजी, ऐसी बात न कहिए। आप तो हमें सदा ही याद आती हैं।"

"हा, हा, तुम दोनों बड़ी गुणवन्ती हो जो बड़े बूढ़ों का इतना खयाल रखती हो। जीती रहो और बड़ी उम्र पाओ!"

सुरजीत दायें बायें बैठने के लिए ठिकाना ढूंढ ही रही थी कि भाभी बोली, "ऐ फातिमा! जा बेटी, अन्दर से मूढ़े या पीढ़िया तो उठा ला! अब आयी हो तो थोड़ी देर बैठो।"

"हाँ, हाँ, भाभी, बैठने को ही तो आये हैं, लेकिन एक बात बड़ी बुरी है तुम्हारी!"

"अरी, बस आते ही लड़ने लगी! अच्छा, अच्छा, जा पहले अन्दर से मूढ़े तो उठा ला। लड़ना ही है तो ज़रा डटकर बैठो, फिर लड़ो।"

लक्ष्मी भाभी बातें भी किये जा रही थी और अपने चरखे की दस्ती भी घुमाये जा रही थी। अभी तक सुरजीत ने सिवाय 'सतसिरी अकाल' के और कोई बात नहीं कही थी। उसकी लक्ष्मी भाभी से कोई बेतकल्लुफी भी नहीं थी, इसलिए वह अजीब बेडौल अन्दाज से खड़ी थी।

फातिमा मूढ़े ले आयी। एक पर वह स्वयं चौकड़ी मारकर बैठ गयी और दूसरा सुरजीत की ओर लुढ़का दिया।

उनके बैठते ही लक्ष्मी भाभी ने पूछा, "अरी हां, तुम क्या कह रही थीं फातिमा?

"हाय, भाभी! मैं तो चुपकी बैठी हूँ। मुंह से कुछ भी नहीं बोली। तुम्हीं लड़ने को दौड़ रही हो।"

"अरी, अभी मूढ़े लाने से पहले तू कुछ कह रही थी न?"

एकाएक फातिमा ने चुटकी बजाकर कहा, "अरे हां अब याद आया! मैं कह रही थी कि तुम्हारी एक बात बहुत बुरी लगती है।"

"मैं भी तो सुनूं, क्या बात बुरी लगी तुझे इस बुढ़िया भाभी की?"

"बस यही बुढ़ियावाली बात! सच, भाभी, तुम अपने-आपको बुढ़िया

मत कहा करो!"

यह सुनकर भाभी ने बड़े बटुए की तरह मुंह फाड़ा, 'हाओहाय! बुढ़िया न कहूँ तो और क्या कहूँ? जानती हो, अब मेरी उम्र भी तो काफी हो गयी है!"

फातिमा तो ऐसे मौके की तलाश में रहती ही थी। उसने जान-बूझकर छेड़ा, "उम्र से क्या होता है, भाभी? अब भी तुम्हारा गोरा बदन ऐसा चमकता है जैसे शीशा।"

अब क्या था! भाभी लक्ष्मी चरखे की हत्थी छोड़कर बैठ गयी। उन्होंने पाँव पर ज़ोर देकर पीढ़ी को ज़रा पीछे खिसकाया और यूं मुंह खोला जैसे पाव पाव भर लड्डू खाने जा रही हों, 'अरी फातिमा बेटी! तुमने मुझे मेरे समय में तो देखा ही नहीं। लो मैं भी कैसी मूर्ख हूँ! उस समय तो तुम पैदा भी नहीं हुई होगी।'

"सो तो ठीक है, लेकिन भाभी आँख से नहीं देखा तो क्या, कानों से तो सुना है!"

यह सुनकर भाभी के कान फड़फड़ाये और उन्होंने उतरते मोतियाबिन्द के हलके हलके जालेवाली आँखों से फातिमा को बड़े गौर से देखा। लेकिन फातिमा भी कोई कच्ची गोलियां नहीं खेली थी। वह ऐसी गम्भीर बनी बैठी थी, जैसे वह भाभी की भी नानी हो। जितना कुछ भाभी देख पायी उससे उन्होंने अन्दाजा लगाया कि फातिमा मजाक नहीं कर रही है। फिर भी वह अपने आश्चर्य को छिपाने की कोशिश करने के बावजूद छिपा नहीं पायी, 'अरी फत्तो! क्या अब भी लोग मेरी बातें करते हैं?'

फातिमा ने भी हाथ झटककर भाभी के से ही अन्दाज और स्वर में उत्तर दिया, 'हाओहाय! तुम्हें इतना आश्चर्य क्यों हो रहा है भाभी?"

भाभी सँभली, "नहीं तो! ठीक ही तो कहती हो। लोग जरूर बातें करते होंगे!"

"अरी भाभी, मैं पूछती हूं कि सैकड़ों साल गुजर जाने पर भी लोग हीर की बातें करते हैं, साहनी की बातें करते हैं, तो भला तुम्हारी क्यों न करें? तुम तो, अल्ला खैर करे अभी जिन्दा हो।"

उस समय भाभी की शक्ल बस, देखते ही बनती थी। फातिमा ने

खुशामद का एक और गोला छोडा था, "ऐ भाभी ! एक बात तो मैंने और भी सुनी है।"

भाभी ने कान आगे बढाते हुए कहा, 'हाओहाय ! वाह गुरु का नाम लो ! यह नयी बात क्या सुनी है तुमने ?"

"वो चाननजी हैं ना।"

"कौन चानन ?"

"वही जो बहुत भारी कवि हैं ! फुलेलसिंह चानन।"

"कहाँ रहते हैं वह ?"

'यही बीच के दो गांव छोडकर तीसरा उन्ही का तो है।'

"तो मेरी क्या बात है ?"

"भाभी ! वह तुम्हारा ही किस्सा जोड रहे हैं।

'मेरा किस्सा ?"

"हा, भाभी ! जैसे वारस शाह ने हीर राझे का किस्सा जोडा था ना ! वैसे ही चाननजी तुम्हारा किस्सा जोड रहे हैं।'

'क्या कविता मे किस्सा जोड रहे हैं ?"

"कविता मे तो जोडेंगे ही, कवि जो ठहरे !"

'हाय मैं मर गयी ! इस तरह मेरी तो बदनामी हो जायेगी !'

"तो क्या हुआ, जी ? इश्क के मामले मे बदनामी तो हो ही जाती है। हुस्नवाले बदनामी की परवाह भी कहा करते हैं ?"

"हाय, मुझे मरने तो दिया होता !

फातिमा ने अपना मुह सुरजीत के कान के पास ले जाकर धीरे से कहा, "जब किस्सा जुड जायेगा तो अपने आप ही मर जायेगी।"

सुरजीत कुछ नही बोल रही थी। वह चुपचाप यह तमाशा देख सुन रही थी। भाभी ने फिर ऊँचे स्वर मे कहा "अच्छी फातिमा ! जाके चाननजी को मना कर दो। क्यो मुझ गरीबनी को बदनाम करते हैं।"

"अजी, वह तो सच्ची बातें ही लिखेंगे। सच्ची बात मे बदनामी कैसी ? जो है सो है।"

"फत्ती, तू नही समझती, बिटिया ! यह तेरे ग्रन्थीजी तो मेरी जान खा जायेंगे जा जा, कविजी को मना कर दे।"

मत कहा करो !"

यह सुनकर भाभी ने वडे बटए की तरह मुह फाडा, "हाओहाय ! बुढिया न कहूँ तो और क्या कहूँ ? जानती हो, अब मेरी उम्र भी तो काफी हो गयी है !"

फातिमा तो ऐसे मौके की तलाश मे रहती ही थी। उसने जान-बूझकर छेडा, ' उम्र से क्या होता है, भाभी ? अब भी तुम्हारा गोरा बदन ऐसा चमकता है जैसे शीशा।

अब क्या था ! भाभी लक्ष्मी चरखे की हत्थी छोडकर बठ गयी। उन्होने पाव पर ज़ोर देकर पीढी को ज़रा पीछे खिसकाया और यू मुँह खोला जैसे पाव पाव-भर लड्डू खाने जा रही हो, "अरी फातिमा बटी ! तुमने मुझे मेरे समय मे तो देखा ही नही। लो, मैं भी कसी मूख हूँ ! उस समय तो तुम पैदा भी नही हुई होगी।"

'सो तो ठीक है, लेकिन भाभी, आँख से नही देखा तो क्या, कानो से तो सुना है !"

यह सुनकर भाभी के कान फडफडाये और उन्होने उतरते मोतियाबिन्द के हलके हलके जालेवाली आखो स फातिमा को वडे गौर स देखा। लेकिन फातिमा भी कोई कच्ची गोलियाँ नही खेली थी। वह ऐसी गम्भीर बनी बैठी थी, जैसे वह भाभी की भी नानी हो। जितना कुछ भाभी देख पायी उसस उन्होंने अन्दाजा लगाया कि फातिमा मजाक नही कर रही है। फिर भी वह अपने आश्चय को छिपाने की कोशिश करने के बावजूद छिपा नही पायी "अरी फत्ती ! क्या अब भी लोग मेरी बातें करते हैं ?"

फातिमा ने भी हाथ झटककर भाभी के-से ही अन्दाज और स्वर मे उत्तर दिया, 'हाओहाय ! तुम्ह इतना आश्चय क्यो हो रहा है भाभो ?"

भाभी सँभली, "नही तो ! ठीक ही तो कहती हो। लोग ज़रूर बातें करत होगे !"

"अरी भाभी, मैं पूछती हूँ कि सैकडा साल गुजर जाने पर भी लोग हीर की बातें करते हैं, सोहनी की बातें करते हैं तो भला तुम्हारी क्यो न करें ? तुम तो, अल्ला खैर करे अभी जिन्दा हो।

उस समय भाभी की शक्ल बस, देखते ही बनती थी। फातिमा ने

खुशामद का एक और गोला छोडा था "ए भाभी! एक बात तो मैंने और भी सुनी है।

भाभी न कान आगे बढाते हुए कहा, 'हाआहाय! वाह गुरु का नाम लो! यह नयी बात क्या सुनी है तुमने ?'

'वो चाननजी हैं ना।

"कौन चानन ?'

यही जो बहुत भारी कवि हैं! फुनेन्द्रसिंह चानन।

'कहाँ रहते हैं वह ?"

"यही बीच के दो गाँव छोडकर तीसरा उन्ही का तो है।'

"तो मेरी क्या बात है ?"

'भाभी! वह तुम्हारा ही किस्सा जोड रहे हैं।

मेरा किस्सा ?"

हा भाभी! जसे वारस शाह ने हीर-राँझे का किस्सा जोडा था ना! वसे ही चाननजी तुम्हारा किस्सा जोड रहे हैं।'

'क्या कविता म किस्सा जोड रहे हैं ?"

कविता म तो जोडेंगे ही, कवि जो ठहरे!"

'हाय मैं मर गयी! इस तरह मेरी तो बदनामी हो जायेगी!'

तो क्या हुआ, जी ? इश्क के मामले म बदनामी तो होती ही जाती है। हुस्नवाले बदनामी की परवाह भी कहाँ करते हैं ?"

हाय मुझे मरने तो दिया होता।

फातिमा ने अपना मुह सुरजीत के कान के पास ले जाकर धीरे से कहा "जब किस्सा जुड जायेगा तो अपने आप ही मर जायेगी।'

सुरजीत कुछ नही बोल रही थी। वह चुपचाप यह तमाशा देख-सुन रही थी। भाभी ने फिर ऊँचे स्वर म कहा "अच्छी फातिमा! जाके चाननजी को मना कर दो। क्या मुझ गरीबनी को बदनाम करते हैं।"

"अजी, वह तो सच्ची बातें ही लिखेंगे। सच्ची बात म बदनामी कैसी ? जो है सो है।"

'फत्ती, तू नही समझती, बिटिया! यह तेरे ग्रन्थीजी तो मेरी जान खा जायेंगे जा-जा, कविजी को मना कर दे।"

"तो मैं बताऊँ ! चाननजी खुद ही तुम्हारे पास आ रहे हैं।'

'हाय ! वह क्या ?'

"आकर तुमसे मिलेंगे। तुम्हारे जीवन के बारे में और बहुत सारी बातें पूछेंगे !"

"ना, ना, तू तो अभी जाकर उन्हें मना कर दे अच्छा, ठहर उनसे कहना कि आ ही रहे हैं तो जरा मौका देखकर आयें। फिर मैं खुद ही उन्हें समझा लूंगी।'

"मौके से क्या मतलब, भाभी ?'

भाभी अपना मुंह फातिमा के इतने निकट ले गयी कि उनकी गरम गरम साँसो को फातिमा ने अपने नरम-नरम गाल पर महसूस किया।

"मेरा मतलब है, फत्तो वह जरा ग्रंथीजी को देखकर आयें ! वह आस पास न हो तो अच्छा है।

'ग्रंथीजी तो हमेशा इधर-उधर घूमते ही रहते हैं। कहा जाते हैं वह घूमने ?'

"यही तो रोना है, न जाने कैसे कैसे पापड़ बेलते फिरते हैं ! न जाने किस किसके पीछे "

"यह मत कहो, भाभी ! अब बेचारे बूढे हो गये ग्रंथीजी तो।"

"अरी, दाढी ही तो सफेद हुई है, मन तो आज भी उतना ही काला है।"

'तुम्हारा मतलब है कि उनका दिल अभी जवान है ?'

"अब तुम जो चाहो, समझ लो ! मैं पूछती हूँ कि जब तन जवान नही तो दिल की जवानी से क्या होगा ?"

"यह भी ठीक है। लेकिन मर्दों को तो बस, मरते दम तक हवस बनी रहती है भाभी !'

'अगर मर्द औरतो की तरह सीधे हो जायें तो फिर यह संसार स्वर्ग न बन जाये !"

इसके बाद भाभी ने अपने 'समय' की बातें शुरू कर दी—शरमाती-लजाती हुई यह भी कह गयी कि फला आदमी बड़ा ही बांका जवान था मरदूद मुझे देखता तो आखें नचा नचाकर गाने लगता

तू रोवेंगी पिप्पल दे ओहले
यार गडडी चढ जानगे ।

"हाओहाय ! बडा बदमाश था वो तो !"

"अरी, क्या कहू ! कोई एक हो तो उसकी बात भी करें, वहा तो "

फातिमा न बात काटते हुए पूछा, "पर, भाभी, तुम इतन जनो से निपटती कैसे थी ?'

इस पर पहले तो भाभी ने ठुड्डी पर उँगली रखकर बडे आश्चय से फातिमा की ओर देखा। फिर एकदम कुवारी लडकी की तरह शरमाकर चेहरा अपने बाजू के पीछे छिपा लिया ।

फातिमा ने सुरजीत की ओर नज़र डाली और आँख मार दी ।

सुरजीत को फातिमा की बेबाकी पर आश्चय भी हो रहा था और मजा भी आ रहा था। एकाएक उसकी नजर गुरुद्वारे के रहट से परे जा पहुँची। वह एकदम सहम उठी। धीरे स फातिमा की कमर मे चूटकी लेकर वह बुदबुदायी, "ए फत्ती ! उधर देख !'

'क्या है ?" कहते कहते फातिमा न उधर देखा, जिधर सुरजीत ने इशारा किया था ।

सुरजीत ने घबरायी हुई आवाज म कहा, 'चाचा बागर्डसिह है '

"उई अल्ला ! अब क्या होगा ?"

सुरजीत के भी पसीने छूट गये। बागर्डसिह म वह भी बहुत डरती थी। वह बागर्टसिह की आखो के सामने ही जवान हुई थी, लेकिन बचपन स जो डर उसके दिल मे बैठा था, वह अब तक निकल नही पाया था। बागर्डसिह की आखें ऐसी थी, जैसे शीशे के बण्टे। जब वह बिना पलकें भपकाये अपनी साप की सी आखो से उसकी ओर देखता, तो उसे यू महसूस होता, जैसे धडकते धडकते एकदम उसका दिल रुक जायेगा। उसने थरथराती हुई आवाज म कहा, "चाचा तो इधर ही आ रहा है !'

उई अल्ला ! मैं समझी सीधा ही निकल जायेगा।"

दोना लडकिया को और कुछ नही सूझा तो उठकर बाडे से लटकती हुई लौकिया के पास जा खडी हुई। उधर बचारी भाभी की इट्टी सिट्टी गुम थी।

बागडसिंह का नाम सुनते ही इलाके में सबकी जान हवा हो जाती थी। लड़कियों की बातें सुनकर भाभी और घबरायी कि हो सकता है, बागडसिंह लड़कियों से तो कुछ न कहे, हां, उसकी चुटिया जड़ से उखाड़कर उसके हाथ में थमा दे।

बागडसिंह कन्धे पर खेस डाले और तुतिये रंग का तहमत फड़फड़ाता हुआ भाभी के पास पहुँचा। दरअसल वह लड़कियों को देखकर वहाँ नहीं आया था। उसे तो ग्रन्थीजी से मिलना था। करीब आते ही उसने पूछा, "ग्रन्थीजी कहाँ हैं ?"

"भइया, क्या जानूं। उनके पाँव में तो चक्कर है। न जाने कहाँ-कहाँ घूमते फिरते हैं।"

भाभी ने एक तरह से तो शिकायत लगायी, लेकिन बागडसिंह ने उसकी इस बात पर कोई ध्यान न देते हुए भारी आवाज़ में कहा, "अच्छा, अच्छा! जब आयें तो बता देना कि कल सुबह से ही सरदारजी के यहाँ अखण्ड पाठ शुरू होगा

"अच्छा, कह दूंगी।"

बागडसिंह ने घुड़ककर कहा, "ऐसा न हो कि तुम भूल जाओ और सरदार मुझ पर बरसें। तुम सठियाई हुई तो हो ही!"

यह सुनते ही भाभी का गला सूख गया। उसने कुछ कहने की बहुत कोशिश की, लेकिन उसके हलक से बत्तख की सी 'कें' की आवाज़ निकल-कर रह गयी।

इसके बाद न जाने बागडसिंह क्या-क्या कहता कि एकाएक उसकी नज़र बाड़े के पास खड़ी लड़कियों पर जा पड़ी। वह उन्हें वहाँ देखकर हैरान रह गया। भल्लाकर बोला, "अरी, तुम लोग यहाँ क्या कर रही हो ?'

सुरजीत का तो रंग ही पीला पड़ गया। उसने धीमे से फुसफुसाकर फातिमा से कहा "कोई बहाना लगा दे ना!'

"ना, बाबा! तू ही बोल।

"हरामखोर! दो घण्टे से चिपड़ चिपड़ लगा रखी है। अब ज़रा बात करने का मौका आया है तो तुझे साँप सूंघ गया!'

अब बागर्डसिह ने अपनी छोटी-सी दाढी को मुटठी म लेकर झटका दिया जैसे यह दाढी उसकी अपनी न हो। फिर लम्बे लम्बे डग भरता हुआ उनके निकट आ गया, "सुना नही ? मैं पूछता हूँ कि तुम गाव से इतनी दूर यहा अकेली क्या कर रही हो ?"

अब तो फातिमा को भी महसूस हुआ कि अगर कोई जवाब न दिया तो बागर्डसिह उनकी चुटिया पकडकर कुएँ मे लटका देगा। चुनांचे वह जल्दी जल्दी अपनी चुधी आखो को झपकाते हुए और लाड से मुह सँवारते हुए बोल उठी, "चाचा, हम तो लौकी लेन आये थे यहा।'

बागर्डसिह ने एक लौकी झटके से तोडकर जमीन पर फेंकी और फिर अपना देशी जूतेवाला भारी पाव उस पर जमाकर उसे कुचल डाला। और एक मूछ को दातो मे दबाकर बोला "फातिमा की बच्ची ! मेरे सामने टर टर करती है ! मुझे बेवकूफ बनाती है, चण्डाल कही की ! तू ही सुरजी को यहाँ लायी है। अगर झूठ बकेगी तो तेरी खोपडी इसी तरह पाव तले कुचल दूगा !'

सुरजीत बेशक चाचा बागर्डसिह स बहुत डरती थी फिर भी आखिर वह बेटी तो काबलासिह की ही थी ! और यह भी जानती थी कि बागर्ड-सिह जबान से तो चाहे कुछ कह ले, लेकिन काबलासिह की बेटी पर हाथ उठाने की उसकी हिम्मत नही हो सकती। चुनाचे जरा नाज से उसने अपने सिर को हलका सा झटका देकर ऊपर उठाया, जिससे उसका लम्बा कद और भी लम्बा दीखने लगा। फिर उसने नाप तोलकर कहा, चाचा ! यह मुझे यहा नही लायी, मैं कोई बच्ची नही हूँ कि जो मुझे जहा ले जाय मैं वहाँ चली जाऊँगी। हम तो देवी के छप्पड पर कपडे धोने आये थे। वहा मैंने ही इसे कहा कि चलो गुरुद्वारे तक चलें मैं वहा मत्था ही टेक आऊँगी।

बागर्डसिह उनकी ओर चुपचाप ऐसे देखता रहा जैसे उसे उनकी एक भी बात पर यकीन न हो। लेकिन इसके बाद और कोई बात नही हुई। लडकियाँ मुह फेरकर चुपचाप छप्पड की ओर चल दी, लेकिन उन्हे यू लगता रहा, जैसे बागर्डसिह की बटननुमा आखें अब भी उनकी पीठ को चीर रही हो।

जब वे काफी दूर निकल गयी, तो बागर्डसिह न जोर से खासकर हलक

के बीचोबीच से बलगम का बडा सा लादा निकाला और निशाना बाधकर उसे कुचली हुई लौकी पर जमा दिया।

दो

गुरुद्वारे से निकलकर बागर्डसिह फिर अपने रास्ते पर हो लिया। वह धुएँ के बल खात हुए स्तम्भ की तरह खेतो मे से होता हुआ बढता चला गया। पौन घण्टा चलन के बाद वह बूर्डसिह के तबले के निकट पहुँचा। तबेले के बाहर दो सिक्ख बढई पेड के लम्बे तने को काट रहे थे। तना अडगे मे फँसा हुआ था। एक बढई जमीन से ऊपर, अडगे के कोने पर खडा था और दूसरा एक घुटना जमीन पर टेके अधखडा सा था। एक लम्बे आरे से तन के पहलू को चीर रहा था। उसकी एक दस्ती ऊपरवाले बढई के दोना हाथो म थी और दूसरी नीचेवाले बढई के हाथो मे। वे दोनो बारी-बारी आरे को खीचत-ढकेलते थे। आरे के चलन से वातावरण मे एक अजीब किस्म का सगीत घुल मिल रहा था। बुरादा निकल निकलकर नीचेवाले बढई की दाढी पर बठ रहा था। ऊपरवाले बढई के घुटने बूर से अटे हुए थे।

उनके निकट पहुँचते ही बागर्डसिह न भारी आवाज मे कहा, वाह गुरजी दा खालसा ! वाह गुरजी दी फतेह !"

उन दोनो आदमियो के हाथ रुक गये, लेकिन उन्होने मुह से कुछ नहा कहा, चुपचाप बागर्डसिह की ओर देखने लगे।

बागर्डसिह ने पूछा, बूर्डसिह तबले मे है या घर पर ?"

नीचे खडे बढई ने पसीने से तर बाह उठायी और उँगली की बजाय पूरे हाथ से इशारा करत हुए बोला, "वह सामन बरगद के नीचे बठा है।"

यह सुनकर बागर्डसिह ने कधो से खिसकत हुए भारी पल्लू को उठाया और फिर से घुमाकर उसे अपने कधो पर जमा दिया। इसके साथ ही उसके कदम आग बढ गये। फिर वही आरे की आवाज गूजने लगी।

जब बागर्डसिह बरगद के पास पहुँचा तो उसने देखा कि बूर्डसिह केवल तहमद बाँधे एक छोटी-सी खाट पर बठा है। चौडी सिल की तरह फली

उसकी पीठ दिखायी पड़ रही थी। उसका मुह दूसरी ओर था और वह एक लम्बी कपास की छडी से कघा बाधकर छडी को दूसरे सिर से पकड़े अपनी पीठ खुजा रहा था। उसके बाल काफी सफेद हो गये थे। बदन भरपूर और लाल था। साठ वर्ष का हो जाने के कारण पुट्ठों के लोथड़े लटकने लगे थे। सिर पर इतना गंज हो गया था कि अब जूडा गुद्दी से कुछ ही ऊपर बँधता था।

बागड़सिंह ने भारी आवाज़ मे नारा लगाया, "वाह गुरुजी दा खालसा!"

बूड़सिंह ने घूमकर देखे बिना ही जवाब दिया, "वाह गुरुजी दी फतेह, भाई! कौन है?"

बूड़सिंह की आवाज ऐसी थी, जैसे वह किसी बड़े मुहवाले कुएँ की तह से आ रही हो।

बागड़सिंह कुछ बोले बिना उसके सामने जा खड़ा हुआ। उसे पहचानते ही बूड़सिंह की गुच्छेदार मूछो में एक करारी मुस्कान एड़िया रगड़ने लगी, 'ओए बागड़सिंहा! ओ तेरी तो आवाज भी नहीं पहचानी गयी!'

यह सुनकर बागड़सिंह ने अपना एक पाव जूते में से निकालकर चारपाई की पट्टी पर जमा दिया और अपने हाथ से बूड़सिंह के नमस्कार कधा को थपथपाते हुए बोला, 'बूड़सिंह अपने कानो में तारेमीरे का तेल डाला करो। मालूम होता है, मैल के ढेर फँस गये है अन्दर!'

यह सुनकर बूड़सिंह ने इतने ज़ोर का कहकहा लगाया कि उसके अगले दात पहले से ही न उखड़े होते तो अब जरूर उखड़कर परे जा गिरते। उसने बागड़सिंह के लिए चारपाई पर जगह छोड़ दी और अपनी पगड़ी फैलाकर उसके नीचे बिछाने लगा। बागड़सिंह ने चुटकी से पकड़कर उसकी पगड़ी परे हटा दी और कुछ मजाक, कुछ गम्भीरता से बोला 'यार, इसे परे ही रख, मुझ पर भी जुएँ चढ जायेंगी!"

फिट्टे मुह!' कहते-कहते बूड़सिंह ने मजाक ही मजाक मे दुलत्ती झाड़ने के लिए अपनी टाग ऊपर उठायी, लेकिन बागड़सिंह ने उसका पाव रास्ते में ही दबोच लिया और उसके टखने के गिर्द अपनी मजबूत उँगलियाँ लपेटते हुए बोला, 'बुड्ढी घोड़ी लाल लगाम! बरखुरदार, अब जवानी से

हाथापाई मत किया करो।"

बूर्डसिंह ने वेपरवाही से सिर को पीछे फेंककर फिर ज़ोर का क़हकहा लगाया। उसकी फुफ्फेदार मूँछें और भी फूल गयीं। उसने बागर्डसिंह की रान पर हाथ जमाकर कहा, "वाह ओय जवाना! अब यह बताओ कि कच्ची लस्सी पियोगे या पक्की या '

आखिरी 'या' के बाद बूर्डसिंह ने एक आंख बन्द करके अपने चौड़े नथुनों को फड़काया।

बागर्डसिंह ने उसके इस प्रश्न की ओर कुछ ध्यान न देते हुए कहा, "यार मुझ पर तो बड़ी मुसीबत आ पड़ी है।

यह सुनकर बूर्डसिंह ने आखें उसकी आखों में गाड़ दीं। पहले तो मारे आश्चर्य के उसके मुंह से कोई बात ही नहीं निकली फिर उसने धीमे लेकिन भारी स्वर में ऐसे क़हक़हा लगाया, जैसे रात के अँधेरे में पानी भरे मटके लुढ़क गये हों। बोला, 'ओय भूतनी के! तू तो आप ही मुसीबत है! भला तुम पर कौन सी मुसीबत आकर पड़ेगी?"

"ओय, मेरा प्यो (बाप) जो बैठा है ऊपर!"

"काबलासिंह?'

"आहो।

'ओय, काबलासिंह तो अब तुझे बहुत मानता है।"

'बाबा, वह जब तक मानता है, तभी तक मानता है। जब न मानने पर उतर आये तो अच्छे अच्छों के कस-बल निकाल देता है!"

"पर, भाई, तूने ऐसा कौन खून-खराबा कर दिया जो वह तुमसे बिगड़ गया है?"

"खून-खराबा मैंने नहीं किया। डर तो यह है कि कहीं मेरा ही खून-खराबा न हो जाय! तभी तो मैं भागा भाग। तेरे पास आया हूँ।"

"क्या मामला बहुत अड़बग है?'

"अभी हुआ नहीं। लेकिन हो जायगा, अड़बग!"

"ओय मादे यारा! अब ज़रा खोलकर बता बीच की बात!"

"बीच की बात यह है कि रात दो भूरी भसें गायब हो गयी हैं।'

"काबलासिंह की भसें?"

'आहो।"

"तो साले तूने ही गायब की होगी।"

"वाह गुरु का नाम लो! मुझे खुद अपने सिर मुसीबत मोल लेने की क्या ज़रूरत पडी थी?"

"तो इसमे फिक्र की क्या बात है? तू भी किसी की मसें खोलकर ले आ राता रात।"

'भई, मसें तो मैं खोलकर ले आऊँ, लेकिन मुश्किल तो यह है कि ऐसी पली हुई मसें मिलेंगी कहा?"

"पर, यार! बडी हैरानी की बात है, य चोरो के घर मोर कसे पड गये?'

"मस तबेले मे से चोरी नही हुइ। बेलासिह उन्ह चराने के लिए ले गया था। वही गाव-भर के डगर ले जाता है। दुपहर को कही उसकी आख झपक गयी। मसें या तो उसी बीच चरती चरती कही दूर निकल गयी और वही से उन्ह कोई हाककर ले गया, या फिर किसी ने बेलासिह को सोते देखकर मेंसें उडा ली।"

"लेकिन है यह बडी हिम्मत की बात!"

'हिम्मत की बात तो है, लेकिन ऐसी हिम्मत अपने इलाके का कोई आदमी नही कर सकता। बाहर के इलाके के बदमाश घूमत घामते इधर आ निकले होंगे। जान पडता है, वही इन मसा को ले उडे।"

'इसकी जिम्मेदारी तो बेलासिह पर है।"

'हा, भाई, जिम्मेदारी तो उसी की है। लेकिन मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इसम उसकी कुछ शरारत नही है। वेचारा बडा कमजोर और डर-पोक आदमी है। काबलासिह को पता चल गया तो वह उसकी खाल खिचवाकर भुस भरवा देगा। बेलासिह बेचारा मेरे पाव पर गिर पडा। रो रोकर कहता था कि मैं तबाह हो जाऊँगा, बरबाद हो जाऊँगा।'

बूर्डासिह ने अपना हाथ माथे पर फेरना शुरू किया तो उसकी हमवार खोपडी से फिसलता हुआ उसका हाथ जूडे पर जाकर अटक गया। नन्हा सा जूडा बडे सिरवाली कील की तरह उसकी गुद्दी के ऊपर गडा हुआ दिखायी देता था। अब वह सोच रहा था।

बागड़सिंह ने फिर कहना शुरू किया, "मैं तुम्हारे पास केवल यह जानने के लिए आया हूँ कि अगर तुम बता सको कि किसी के यहाँ उन दो भूरी भैंसों की तरह की भैंसें हों तो मेरा काम निकल जाय।'

'भैंसें तो हैं, भाई, लेकिन व आदमी भी हरामी हैं।"

यह सुनकर बागड़सिंह के कान खड़े हो गये। उसकी आँखों में आशा की किरण चमक उठी। बोला, "तुम्हारा मतलब ?"

बूड़सिंह ने हाथ उठाकर कहा, 'तुत्त-तुत्त तुम कैसे उनसे डबल हरामी हो!"

अब बागड़सिंह के मन की तसल्ली हुई। बूड़सिंह ने बात जारी रखते हुए कहा 'मेरा मतलब तो केवल यह था कि जरा एहतियात से काम लेना पड़ेगा।"

'बाकी बातों को छोड़ो, मुझे केवल इतना बता दो कि वे भैंसें कावलासिंह की भैंसों से किसी तरह भी हलकी तो नहीं पड़ती ?"

'अरे, वाह गुरु का नाम लो! तुम्हें मेरी नजर पर इतना भी एतबार नहीं ?"

'बस, तो ठीक है। इतना और बता दो कि ये भैंसें किसके पास हैं ? वे लोग किस गाँव में रहते हैं ? और वह गाँव यहाँ से कितनी दूर है ?"

'भैंसों का मालिक है तारासिंह गाँव का नाम ठट्ठा! यहाँ से बारह कोस के फासले पर है।'

बागड़सिंह ने उठने के लिए बदन को सीधा किया।

आज ही रात मैं वहाँ से दोनों भैंसें ले आऊँगा।"

"लेकिन "

"लेकिन वेकिन कुछ नहीं। तुम नहीं जानते कि मामला बड़ा नाजुक है। अगर कहीं कावलासिंह को खबर हो गयी तो मेरी जो गत बनेगी सो तुम जानते ही हो, लेकिन बेचारा बेलासिंह तो पिस ही जायेगा। मुझे तो केवल डाँट फटकार ही पड़ेगी बेलासिंह की जान की भी खैर नहीं।"

'नहीं, मैं वह बात नहीं कह रहा। मेरा मतलब है कि अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हारे साथ चल सकता हूँ।"

तुम ? तुम बेशक चलो। तुम्हारे चलने से तो हमारा काम और

आसान हो जायगा।"

"मैं तुम्हें सीधा उन भैंसों तक पहुँचा दूँगा, फिर उन्हें उड़ाना तुम्हारा काम है। मैं तो परे हट जाऊँगा, क्योंकि तारासिंह और उसके आदमी मुझे पहचानते हैं।'

"भाई तुम चलो तो तुम्हारी मेहरबानी।"

'मेहरबानी की कोई बात नहीं। बस, मैं इतना चाहता हूँ कि यह काम बिना खून-खराबे के ही हो जाय।"

'अरे, तो यहाँ खून-खराबे से कौन डरता है?"

'तुम्हारे डरने या न डरने का सवाल नहीं है। मैंने भी इन्हीं कामों में बाल सफेद किये हैं। मेरा तो उसूल यह है कि जो गुड़ से मरे उसे जहर क्या दो?"

बागड़सिंह ने बेपरवाही से अपने चौड़े कन्धों को हिलाया और तहबन्द में बल ठीक करता उठ खड़ा हुआ।

उसकी यह बेपरवाही देखकर बूटासिंह फिर बोला, "देखो, जो बात मैं कहता हूँ, उसे पल्लू में बाँध लो। इतनी-सी बात के लिए किसी का खून हो गया तो मामला पुलिस तक पहुँचेगा। पकड़ धकड़ होगी। और जो कहीं यह पता चल गया कि भैंसें कावलासिंह के घर में बंधी हैं तो फिर और लम्बा चक्कर चलेगा। तुम जानते ही हो कि अगर कावलासिंह को यकीन हो गया कि तुमने ही भैंसें चुराकर उसे फँसाने की कोशिश की है, तो वह बुरी तरह बिगड़ जायगा। फिर तो खुद ही समझ लो कि तुम्हारी क्या दशा होगी।"

बागड़सिंह ने मामले के इस पहलू पर तो ध्यान ही नहीं दिया था। फलतः इस बार उसने अपने कन्धों को बेपरवाही से नहीं हिलाया। उसके मन पर असर होता देखकर बूटासिंह ने अपना घने बालोंवाला हाथ उसके बाजू पर रखकर कहा, 'मैं तो यही समझ रहा हूँ कि कहीं ऐसा न हो कि बेकार का झगड़ों के बीच तुम लम्बे झगड़े में पड़ो। इसीलिए मैं तुम्हारे साथ चल रहा हूँ। अपना कुछ न होगा। भैंसें निकालेंगे और दबे-पाँव लौट आवेंगे। आदमी तो वे हरामी हैं लेकिन दो बेला के नित्त ख्वाब दौड़ पूरे नहीं करेंगे। अगर ख्वामख्वाह साथ का गद्दा साथ भी किसी की भैंसें उड़ा

रातोंरात/

लायेंगे। इस तरह सारा मामला बराबर हो जायगा।"

बागड़सिह की पगडी के अन्दर कोई चीज सुरसुरायी। उसने उँगलियाँ पगडी मे अन्दर घुसेडकर धीरे धीरे सिर खुजाते हुए कहा, "तुम्हारी बात मन को जँचती है। ठीक है, मुझे तो दो भसें पूरी करनी हैं, और यह काम अगर शान्ति से हो जाय तो इससे अच्छा भला और क्या होगा?"

"काम तो शान्ति से हो जायगा, लेकिन तुम्हारा दिमाग जरूरत से कुछ ज्यादा जल्दी ही खौलने लगता है। बस, जरा इसे काबू म रखना, बाकी सारा मामला अपने-आप ठीक हो जायेगा।"

बागड़सिह ने बूडसिह का हाथ अपने हाथ मे लेते हुए कहा, 'अच्छा, तो अब चलें। हाँ, यह बताओ कि तुम हमे चब्बे मे आन मिलोगे, या हम तुम्हें यही से ले लें?"

"भाई, ठट्टा तो इधर से होकर ही जाना पडेगा, इसलिए मेरा चब्बे जाना बेकार है।"

"बस तो ठीक है! मैं आठ भरोसे के जवान लेकर यही आ जाऊँगा। हम कुल दस आदमी हो जायेंगे। क्यो? इतने आदमियों से काम चल जायेगा ना?"

"काम तो चल जायेगा, बस, शर्त यह है कि कही गाववाले न जाग उठें।'

"अजी, वाहगुरु का नाम लो! हम ऐसी सफाई से काम करेंगे कि किसी को हवा तक न लगेगी।"

इसके बाद बागड़सिह ने एक बार फिर अपने खेस को सँभाला और लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वहा से रवाना हो गया।

रात हुई। नौ बजते बजते हर ओर खामोशी का राज था। महीन बदली म लिपटे हुए चाद की मलगजी-सी चाँदनी चारो ओर फैली हुई थी। पेड, जिनकी शाखाएँ झुकी हुई थी यू दिखायी देते थे, जसे किसी ने उन्हे जादू के जोर से बिलकुल चुपचाप खडा कर दिया हो न वे हिल रहे थे न पत्तिया फडफडा रही थी और न हवा शाखाओ मे से गुजरकर सीटिया बजा रही थी।

बूडसिह कफ-लगी पगडी बाधे था, जिसके शमले उसके सिर की हर

हरकत के साथ लहराते थे। उजला लट्ठे का बुना [illegible]
बटनोवाली काले रग की वास्कट, नीचे मूगिया रग [illegible]
लकडी की तरह सख्त चमडे का भारी भरकम [illegible]
धजकर खडा था, जैसे चोरी करने नही, बल्कि [illegible]

थोडी देर बाद उसने दूर मिट्टी उड़ती [illegible]
सिंह तथा उसके साथी घोडे और सांडनियाँ [illegible]
भी अपने घोडे को पीपल के चारो ओर बने [illegible]
कर दिया और खुद चबूतर पर चढ गया, [illegible]
रखकर घोडे पर सवार होने म दिक्कत [illegible]
तब वह जमीन से ही उछलकर दौड़ते [illegible]
था। इस बात का खयाल आते ही [illegible]
और फिर एक ठण्डी सास भरकर [illegible]
नोक से टटोलकर उसने पाव [illegible]
झटका देकर धीमे स्वर म बोला [illegible]

निकाल लिया और फिर उसके एक ही इशारे से घोडा हवा से बातें करने लगा। उसके पीछे जब दूसरे घोडे और सांडनियां दौडे तो धरती थरथराने लगी।

बूर्डसिह उस सारे गुट को बडी होशियारी से ले जा रहा था—हर गाव, हर बस्ती मे बचता हुआ, खतरे के हर स्थान से कन्नी काटता हुआ, मदार और पपोलिया के पौधो को रौंदता हुआ, कभी बडी बडी झाडिया की ओट से, कभी घने पेडा और झुरमुटा म से सबको निकालता हुआ वह तीर की सी तेज़ी के साथ बढता चला गया। कही कही झाडिया मे छिपे भेडिय और गीदड इस शोर से बिदककर तेज़ी से इधर उधर भाग निकलत।

रास्ते मे कोई बात नही हुई, कोई इशारा नही हुआ किसी ने दायें-बायें ताका नही। उन सबकी नज़रें तो अपनी मजिल पर जमी हुई थी—वह मजिल जो फीकी चादनी की धुध मे छिपी हुई थी।

आखिरकार यह सफर समाप्त हुआ। गुट से आग आग घोडा दौडाते हुए बूर्डसिह ने बिना पीछे देखे अपना हाथ ऊपर उठा दिया। सब लाग पहले से ही इशारे का इतजार कर रहे थे। बूर्डसिह का हाथ हवा मे उठते ही घुडसवारो ने लगामे और साडनी सवारो ने नकेलें खीच ली। उनके एकदम रुक जाने से जानवरो के पाव तले से धूल के नन्हे नन्हे बादल उठे और इधर उधर फैले हुए खेतो मे डूब गय।

रुकते ही बागडसिह ने अपन घोडे को आगे बढाया और बूर्डसिह के बराबर आ खडा हुआ। बूर्डसिह ने हाथ उठाकर एक ऊंघते हुए गाव की ओर इशारा किया "वही ठट्टा है।"

"तो हम मजिल तक आ पहुंचे।'

बूर्डसिह ने चेहरा घुमाकर अपनी बूढी आखो से बागडसिह की ओर देखा और धीमे स्वर मे बोला 'बरखुरदार' हमारी मजिल यह नही है, हमारी मजिल तो हमारा अपना गाव ही है। जब हम अपन काम म सफल होकर अपने घर मे जा घुसेंगे तो समझ लेना कि मजिल तक आ पहुंचे।'

बागडसिह न तजुर्बेकार बूढे की बात को स्वीकार किया और मूछा ही-मछो मे मुस्कराकर बोला, 'तो अब हमे कायवाही शुरू कर देनी चाहिए।"

'नही अभी नही।'

अबकी बागड़सिंह को बूड़सिंह की बात पर आश्चर्य हुआ, लेकिन उसे कुछ कहने की जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि बूड़सिंह ने उसके मन की हालत को भांपते हुए कहा, 'वापसी में फिर हमारे जानवरों को दौड़ना पड़ेगा। उन दो मसों के कारण वह इतनी तेजी से तो न दौड़ सकेंगे, जितनी तेजी से वे यहाँ आये हैं। लेकिन फिर भी उन्हें घण्टे-भर आराम मिलना चाहिए। उधर बायें हाथवाले पेड़ों के झुण्डतले अँधेरा भी है और हरी भरी घास भी। हम इन्हें यहीं छोड़ देंगे, ताकि ये कुछ खा पी लें और थोड़ा आराम भी कर लें।"

बागड़सिंह को यह बात ठीक लगी। उसने अपने घोड़े की बाग पेड़ों के झुण्ड की ओर मोड़ दी। उसके साथी भी पीछे-पीछे चले। झुण्ड के नीचे पहुँचकर उन्होंने जानवरों को छोड़ दिया और जमीन पर बैठकर ठट्ठे की ओर देखने लगे।

बूड़सिंह ने सब जवानों को समझाते हुए कहा "देखो, हम दो दो आदमी आगे बढ़ेंगे, ताकि अगर कोई देख भी ले, तो यही समझे कि कुल दो ही आदमी हैं, उन्हें किसी तरह शक न पड़े कि हमारी संख्या इससे कहीं ज्यादा है।"

बूढ़े की इस बात का मतलब सब जवान नहीं समझे। उनकी शक्ल में साफ दिखायी दे रहा था कि वह कुछ समझ नहीं पाये।

बूड़सिंह ने उनके दिल की यह हालत भांपते हुए फिर कहा, "इस तरह हम लोग गाँववालों के घेरे में नहीं फँसेंगे। अगर दो आदमी घिर भी गये तो बाकी लोग उन्हें बचा सकेंगे।"

इस बार हर किसी ने महसूस किया कि बूड़सिंह ने बात पते की कही है।

अब बूड़सिंह ने उन्हें समझाना शुरू किया कि उन्हें यह सारी कार्यवाही कैसे करनी होगी। दो आदमियों को वे अपने जानवरों के पास ही छोड़ जायेंगे। बागड़सिंह को लेकर वह खुद सबसे आगे चलेगा और इस बात का पता लगायेगा कि भैंसें हैं कहाँ। बूड़सिंह ने उँगली उठाते हुए सबको यूँ समझाया जैसे वे छोटे छोटे बच्चे हों, "इस बात की आशा नहीं रखनी चाहिए कि जिस जगह भैंसें होंगी वहाँ कम-से कम दो या इससे ज्यादा

लट्ठबाज पडे दिखायी नही देंगे। इस बात की पूरी जाच-पडताल कर लेंगे कि कौन कहाँ सोया हुआ है। और उनके पास हथियार कैसे हैं। तब हम आगे की कार्यवाही करेंगे। लेकिन, खबरदार! बिना जरूरत किसी पर हाथ न उठे और इस बात की खास कोशिश करनी होगी कि किसी की जान न जाने पाये! न उधरवाला कोई मरे और न इधरवाला।

यह कहकर बूर्डासिंह ने बागडसिंह को हाथ का इशारा करके अपने साथ चलने के लिए कहा। वे खेतो के अन्दर ही अन्दर पौधो की ओट मे छिपे छिप चले जा रहे थे। उस समय गाव के बाहर का रहट चल रहा था और दो बैलो के पीछे गद्दी पर एक आदमी बैठा ऊँघ रहा था। बल भी यूँ दिखायी देते थे, जैसे सोये सोये चल रहे हो। देर तक हाकनेवाले की आहट न पाकर वे रुक भी जाते और खडे खडे जुगाली करने लगते। इस पर हाकनेवाले की नीद खुल जाती और वह भारी आवाज म कहता, 'ओय! साईं मरजे (तुम्हारा मालिक मर जाये)! चलो, बढे चलो!'

बैल फिर सीग हिलाते और गले मे पडी घण्टियाँ बजाते गोल चक्कर काटने लगते।

पहले तो इन दोनो ने पूरे गाँव का चक्कर लगाया और यह देखा कि गाव से कौन-कौन सी गली बाहर निकलती थी और अगर शोर मच जाये तो कहा कहा से उन पर हमला हो सकता था। आखिर वे उस ऊँचे बाडे की ओर बढे, जिसमे तारासिंह के मवेशी बन्द रहते थे। बाडे के छोटे-से फाटक के निकट तीन चारपाइयो पर तीन आदमी सो रहे थे। उन्होने छिपी छिपी नजरो से उन आदमियो को गौर से देखा, वे सब अच्छे तगडे जवान थे, लेकिन उनमे से एक, जो तारासिंह का छोटा भाई था, अपने दोनो साथियो से ज्यादा बलवान दिखायी देता था। बाडे के अन्दर से थोडी-थोडी देर बाद भैंसो और बैलो के बोलने की आवाज सुनायी दे जाती थी। कभी कभी घण्टिया बज उठती थी। बाडा आदमी के कद से काफी ऊँचा था। चारो ओर गोल से बाडे मे लम्बे लम्बे काटोवाले झाड एक दूसरे के अन्दर सटे हुए थे। फाटक भी क्या था आमने सामने गडे हुए लकडी के दो खम्भो के आर पार एक मोटी-सी लकडी फँसी थी, जिसका केवल इतना ही फायदा था कि मवेशी उसे फादकर बाहर नही आ सकते थे।

इतने मवेशी एक ही जगह देखकर वागडसिंह के मुह मे पानी भर आया। उसने धीमे से बूर्डसिंह के कान मे कहा, "यार, जी चाहता है सब-के सब मवेशियों को हांक ले जाऊँ।"

बूर्डसिंह न अपनी लाल-लाल आंखा मे वागडसिंह को सिर से पाव तक देखा और बलगम फँसे हलक से बोला, "यू ही राल मत टपका! अगर तू दो भसा को भी खैरियत से लेकर निकल भागे तो अपने-आपको खुशकिस्मत समझियो।'

यह सुनकर वागडसिंह का खून एक बार तो उबल गया, लेकिन फिर उसे याद आया कि बूर्डसिंह ने जो उसे नसीहत की थी उसके खिलाफ जाना ठीक नही। सबसे ज्यादा उसे कावलसिंह का डर था। इसीलिए वह खून का घूट पीकर रह गया।

"अच्छा, इतना तो बताओ कि पहले भसो को देखोगे या साथियो को बुलाकर लाओगे ?'

"मेरे खयाल म भैसें देख लें। कही ऐसा न हो कि यहा भसें मौजूद न हो और हमारे आदमी खामखाह यहा आयें। कोई जाग उठे तो मुफ्त का झगडा शुरू हो जाये।'

"अच्छा, तो चलो वाडे के अन्दर।"

अबकी बूर्डसिंह न कोई उत्तर नही दिया। वे दोनो जमीन पर अधलेटे से होकर वाडे के फाटक की ओर बढने लगे। उन्हे फाटक की लकडी हटाने की जरूरत महसूस नही हुई, क्योकि वे उसी तरह झुके झुके अन्दर जा सकते थे।

जब वे अन्दर घुसने लगे तो बूर्डसिंह बोला, "देखो, अगर कोई जाग पडे तो लडाई करने की जरूरत नही, हमारी कोशिश यही होनी चाहिए कि एकदम यहाँ से भाग निकलें। खैर तुम्हें समझाने की जरूरत नही कि हमे सीधे वापस पडाव के झुण्ड की ओर नही जाना होगा, बल्कि हम एक लम्बा-सा चक्कर काटते हुए अपने साथियो के पास पहुचेंगे। वसे मुझे उम्मीद नही कि ऐसी नौबत आयेगी।"

वागडसिंह न कुछ उत्तर नही दिया।

वाडे के अन्दर पहुचकर वे धीरे धीरे खडे हो गये, ताकि मवेशी बिदक

न जायें। उन्होंने एक ही जगह खड़े-खड़े नजर दौड़ायी। एक भूरी भैंस बागड़सिंह को दिखायी पड़ गयी, तब तक दूसरी भैंस भी बूड़सिंह ने देख ली। बागड़सिंह मारे खुशी के उछल पड़ा और धीरे से फुसफुसाकर बोला, "वाह! कितनी सुन्दर भैंसें हैं! कैसे चिकने और चमकदार बदन है इनके! इनके सींग भी तो हमारी भैंसा की तरह ही कुण्डलदार हैं!

"बस, बस! तारीफ के पुल मत बांधो! पहले काम की ओर ध्यान दो!"

बागड़सिंह उसका मतलब समझ गया। और वे एक बार फिर बकरी बने बने दरवाजे की ओर बढ़े। पहले उन्होंने झांककर इधर-उधर देखा। सबको उसी तरह सोया पाकर वे बाहर निकल आये। लेकिन तभी बागड़सिंह के हाथ से लट्ठ छूटकर गिरा और उसका एक सिरा पासवाली चारपाई से टकरा गया।

उस पर सोये आदमी की नींद कच्ची थी, वह झटके से उठ बैठा। लेकिन उसने सिर घुमाकर इनकी ओर देखा भी नहीं था कि बूड़सिंह ने अपनी कमर में बंधा, गाढ़े का मजबूत अंगोछा खोल डाला और उसके दोनों सिरों को पकड़, उसने पीछे से घुमाकर उस आदमी के चेहरे पर फेंका। गरदन से ऊपर का सारा चेहरा और सिर अंगोछे में समा गया। तभी बागड़सिंह ने अपनी डेढ़ फुटी कृपाण निकालकर फुर्ती से उसकी नोक उस आदमी के पेट पर जमा दी और उसके कान में सांप की तरह फुफकारकर कहा, "खबरदार! मुंह से चूं भी न निकलने पाये!"

वह आदमी दम साधे रहा। बूड़सिंह ने उसे फौरन चारपाई पर उलटा लिटाकर उसके कंधों को घुटने से दबा दिया, जिससे चारपाई चरचरा उठी। वे डरे कि कहीं उसके साथी भी न जाग उठें। लेकिन कोई नहीं जागा। बागड़सिंह ने उस आदमी के दोनों हाथ उसकी पीठ के पीछे मजबूत रस्सी से कसकर बांध दिये। उसके दोनों टखने भी जकड़ दिये, फिर उन्होंने उसे उठाकर जमीन पर लिटा दिया। बागड़सिंह ने कृपाण की नोक उसके पेट पर जमाये रखी। उधर बूड़सिंह ने जल्दी से बाड़े में से एक कांटेदार झाड़ी खींचकर बाहर निकाली और उसे चारपाई पर डालकर ऊपर से चादर उढ़ा दी, ताकि देखनेवाले को यूं मालूम हो, जैसे चारपाई पर आदमी

चादर ताने सो रहा हो।

यह काम खतम करके उन्होंने उस आदमी को जल्दी से उठाया और खेत में ले गये। वहां उन्होंने पगड़िया के शमले से अपने अपने चेहरे को ढाँक लिया, फिर उसके चेहरे से अंगोछा हटाकर उसके मुंह में उसी के तहमद का सिरा ठूंस दिया, और फिर उसी से उसका मुँह सिर लपटकर मजबूत गाँठ दे दी। यह सब कुछ इस तरीके से किया कि वह नाक से साँस तो ले सके लेकिन न कुछ देख सके और न बोल सके।

उसकी ओर से बेफिक्र होकर वे दोनों वहाँ से निकल भागे और सीधे अपने साथियों के पास पहुंचे। बूड़सिंह ने उनसे कहा, "अब ज्यादा इन्तजार करने की गुंजाइश नहीं। दो आदमी यहां हैं, बाकी आदमी एक एक जोड़े की शक्ल में हमारे साथ चलें। वहां पहुँचकर कुछ तो बाहर रह जायें और कुछ अन्दर से दोनों भूरी भैंसें निकाल लायें।"

बागड़सिंह को एक बात सूझी "बूड़सिंह! मेरे विचार में हम वहां पर सोये हुए बाकी दोनों आदमियों को भी अपने काबू में कर लेना चाहिए और उन्हें भी उसी तरह खेतों में डालकर उनकी चारपाइयों पर झाड़िया बिछा दें। उन पर चादरें उढ़ा दी जायेंगी तो सुबह जब कोई उन्हें जगाने आयगा तभी चोरी का भेद खुलेगा।'

बूड़सिंह का मुंह अजीब अन्दाज में खुला रह गया, "वाह, बरखुरदार! बात तो तुम्हें दूर की सूझी! हां, इस तरह हम अपना काम ज्यादा आसानी से कर सकेंगे। और फिर इस बात का भी डर नहीं रहेगा कि कोई जल्दी में हमारा पीछा करने लगेगा।'

एहतियात के तौर पर दल के कुछ आदमियों ने लाठियों पर चमकती हुई छवियां चढ़ा लीं और वे सब बाड़े की ओर चल दिये। रास्ता उन्होंने दो दो के जोड़े में फैलकर तय किया, लेकिन वहां पहुंचकर एकदम इकट्ठे हो गये। तीन-तीन आदमियों की टोली सोये हुए आदमियों के सिरहाने की ओर से पहुँची और आपस में इशारा करके एकदम कार्यवाही शुरू कर दी। एक आदमी तो फौरन ही काबू में आ गया, लेकिन दूसरा तड़पकर चारपाई से उठ खड़ा हुआ। उसके चेहरे पर अँगोछा बँध गया था, जिसे वह अफरा तफरी में खोलने लगा। यही आदमी सबसे ज्यादा ताकतवर

था, इसलिए डर इस बात का था कि कहीं वह मुकाबले पर खड़ा हो गया तो जरूर खून खराबा हो जायेगा। बागड़सिंह तेजी से आगे बढ़ा। उसने दोनों हाथों की उंगलियाँ एक दूसरे में फँसाकर बड़े ज़ोर की डबल धौल उसकी गुद्दी पर जमायी, जिससे वह चकराकर लड़खड़ा गया। बस, फिर क्या था, सबने फौरन काबू कर लिया। उन दोनों को भी खेत में ले जाकर उनके मुंह में कपड़ा ठूस दिया गया और हाथ पांव मज़बूती से बांध दिये गये। फिर उन तीनों को आपस में इकट्ठे भी बांध दिया गया, ताकि वे लुढ़क पुढ़क भी न सकें।

इतनी देर में बूड़सिंह ने बाड़े में से फिर दो लम्बी लम्बी काँटेदार झाड़ियाँ निकाली और उन्हें चारपाइयों पर डालकर ऊपर से चादरें उढ़ा दीं। यह सब कुछ कर चुकने के बाद उसने मज़ाक में अपने दोनों हाथ चादरों पर फेरते हुए कहा, "पुच पुच्! सोये रहो बेटा! रात भर सोये रहो!"

अब उन्होंने इतमीनान से बाड़े का डण्डा हटाकर मवेशियों के गल्ले में से दोनों भूरी भैंसों को निकाला। उनके गले में बँधी हुई घण्टियाँ खोलकर बाड़े के अन्दर ही फेंक दीं ताकि चलते समय उनके शोर से कोई और मुसीबत खड़ी न हो जाये।

बाड़े के आगे फिर डण्डा फँसाकर वे वापस लौटे। पेड़ों के झुण्ड में पहुंचकर उन्होंने दस पन्द्रह मिनट आराम किया, फिर बूड़सिंह ने कहा 'देखो, अब हमारे लौटने का रास्ता दूसरा होगा। मैं आगे आगे चलता हूँ, तुम लोग पीछे पीछे चले आओ।'

यह दल अब घर की ओर चल पड़ा। दो कोस जाने के बाद एक छोटी-सी नहर दिखायी दी जिसे सुआ कहते हैं। इसकी चौड़ाई मुश्किल से पांच फुट होगी और पानी की गहराई आदमी के घुटने से ज्यादा नहीं थी।

यहाँ पहुँचकर बूड़सिंह रुक गया, और उसके पीछे सारा दल भी रुक गया। बूड़सिंह ने घोड़े से उतरकर एक गोल किया हुआ लम्बा टाट जो उसकी काठी के पिछले भाग से बँधा हुआ था, उतारा और टाट के बण्डल को रास्ते से सुए तक लुढ़काकर फैला दिया। फिर वह अपने साथियों से बोला, 'तुम सब इस टाट पर से होते हुए सुए में जा घुसो, और बागड़सिंह

तुम भसा को पकड़कर सुए के बीच मे उतारो, लेकिन इस बात का खयाल रहे कि इनका खुर टाट के इधर-उधर जमीन पर न पड़ने पाये।'

सब लोग उसका मतलब समझ गये और उसके बताये हुए ढग से सुए मे जा पहुचे। सबसे आखिर मे खुद बूड़सिह ने भी अपना घोड़ा उसी ढग से सुए म उतार लिया और फिर टाट को लपटकर काठी के पिछले हिस्से से बाध दिया। अब वे सब सुए के बीचोबीच चलने लगे।

लगभग चार कोस का फासला उन्होंने ऐसे ही तय किया। फिर वे लोग सुए मे निकले भी उसी तरकीब से। अब वे सीधे खेतो मे ही घुसे, जहा की जमीन सख्त थी, इसलिए खुरो के निशान लगने का खतरा कम था।

बूड़सिह ने तजुर्बेकार खूसट की तरह अपनी शरारती आखें साथियो पर डाली और बोला, 'अगर किसी ने भसो के खुर के निशानो से पता लगाने की कोशिश की भी तो जिस जगह हम सुए मे घुसे थे, वहा पहुचकर वह हैरान रह जायगा, क्योकि वहाँ से तो भसो का निशान एक सिरे से ही मिट जायगा। लेकिन अगर वह समझ भी गया कि हम उस स्थान से सुए मे जा घुसे होगे, तो फिर उसके लिए इस बात का पता लगाना असम्भव होगा कि हम सुए से निकले किस स्थान पर? हमारा निशान अगर कुछ हो भी तो पौधो की जडो के आस पास ही होगा। लेकिन उस तो सुए के किनारे किनारे हमारे निशान ढूढने होगे और वहाँ तो हमने निशान कोई छोड़ा ही नही। फिर वह हमारा पता कैसे लगा सकेगा? क्यो बरखुरदार बागड़सिह?'

बागड़सिह ने दोनो हाथ जोड़कर भद्दी हँसी हँसते हुए कहा, "अरे भाई! तुम तो महा हरामियो के भी गुरुघण्टाल हो! हम तो अधाधुध लड़ना मरना ही जानते है। आज तुम्हारे साथ यह कार्यवाही करके मुझे काफी शिक्षा प्राप्त हुई है।"

अब रास्ता सीधा था। किसी का भय नही था। आधी रात के लगभग वे लोग चब्बे के करीब जा पहुचे। बूड़सिह तो अपने कुएँ पर ही रुक गया और बागड़सिह 'वाहे गुरुजी दा खालसा' और 'वाहे गुरुजी दी फतह' करता हुआ अपने साथियोसहित चब्बे की ओर बढा।

आखिर जब वह उन दो भूरी भसो को तबेले म बांध चुका, तब जाके उसके मन का बोझ हलका हुआ और उसने घडे म से कडेवाले लम्ब गिलास मे ठण्डा पानी भरकर अपने हलक म उँडेल लिया।

फिर वह अपनी खाट पर लेट गया और ज़ोर-ज़ोर से खर्राटे भरने लगा।

तीन

दूसरे रोज सुबह तडके—तीन बजे ही काबलासिह के घर म चहल पहल शुरू हो गयी।

हर साल कावलासिह के घर मे अखण्ड पाठ रखाया जाता था, जिसे आम तौर पर वे सभी लोग 'खण्ड पाठ' कहते थे। और बच्चे तो इसका मतलब उस खाड से समझते थे, जिससे कि 'कडाह प्रसाद' यानी हलवा बनाया जाता था।

यह अखण्ड पाठ रखाने का सिक्खा के घरो मे आम रिवाज था। जिसका जी चाहे अपने घर मे अखण्ड पाठ कराये। लेकिन काबलासिह यह पाठ एक खास उद्देश्य से ही कराया करता था—अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए नही, बल्कि वह तो अपनी धन दौलत के दिखावे के लिए यह सब कुछ करवाता था। यह पाठ कई वर्षो स कराया जा रहा था और अब तो इलाके भर म इस पाठ की मशहूरी हो गयी थी, क्योकि जिस दिन इसका भोग पडता, उस दिन काफी दान पुण्य किया जाता था। जितने अर्से तक अखण्ड पाठ जारी रहता, उतने अर्से तक गरीबो और मुसाफिरो को दोनो वक्त भोजन कराया जाता, और भोग के दिन तो मना हलवा बनता था। वैस तो हलवा प्रसाद के तौर पर ही दिया जाता है, लेकिन काबलासिह के यहा हर्क को पेट भरकर हलवा खाने को मिलता था। भुनी हुइ सूजी और देशी खाड का बना हुआ, घर के घी मे तर बतर हलवा लोग एक बार म तीन तीन सेर तक उडा जाते थे।

पाठ कावलासिह के पुराने मकान मे ही कराया जाता था। वह मकान केवल कच्ची इटो और गार का बना हुआ था। उसमे और तो कोई खूबी

नही थी, लेकिन उसका दालान बहुत बडा था, इतना बडा कि उसम तीन-चार छोटे-मोटे मकान भी बन सकते थे। पहले सारा परिवार यही रहता था, लेकिन जब नया मकान तैयार हुआ तो सब उसमे आ बसे। नया मकान आधा कच्ची इटो का और आधा पक्की इटो का बनवाया गया था। इसकी ड्योढी तो पूरी की-पूरी पक्की इटो की बनी थी। पुरान मकान के कमरो मे टूटी फूटी चीजें या हल, पजाली, सोहागा, आदि खेती-बारी मे काम आनवाली सभी चीजें भरी रहती थी। अगर कोई मेहमान आ जाय तो उसके लिए भी पुरान मकान के चौबारे पर ही रहने का प्रबन्ध किया जाता था।

भोग के मौके पर ऐसी सजावट की जाती जैसे शादी होने जा रही हो। लाउडस्पीकरो का तो उन दिनो कोई रिवाज ही नही था, लेकिन इसके सिवा और सब कुछ किया जाता था। बडे सहन म शामियाना लगता, जमीन पर बडी-बडी दरिया बिछती, मकान के आस-पास हरे लाल-नीले-पीले कागजा की झण्डिया बाधी जाती, जो सुतली स चिपकी हुई दूर तक लहराती दिखायी देती थी। मकान के पास से जो रास्ता गुजरता था, वहा दूध की कच्ची लस्सी के मटके भरे रहते थे। इसमे देसी खाड घुली होती। न केवल राहगीर छक कर भर भरकर लस्सी पीते, बल्कि गाव का करीब-करीब हर आदमी काबलासिह की कच्ची लस्सी पीने जरूर आता। चूकि खुशबू के लिए लस्सी म केवडा मिलाया जाता था, इसलिए देहातियो को यह लस्सी पीने मे और मजा आता था। बाद म जब खुशबूदार डकार आते तो एक दूसरे से कहते— देखो! गुलाब के डकार आ रहे हैं।'

घर की बडी बूढी औरतें और मर्द काफी जल्दी जाग उठते ताकि वे लोग नहा धोकर गुरु ग्रन्थ साहब का सवारा (सवारी नही!) गुरुद्वार से अपने घर ले आयें। ग्रन्थी भी एक पहर रात रहे पुराने मकान म आता, जहा उस समय गैस जल रहे होते थे। उनकी रोशनी मे वह पीले रग की साफी गले म डाले, अपन दोना हाथा की उँगलिया एक-दूसरे मे उलझाय और हाथ नाफ पर जमाये बडे अन्दाज से इधर उधर घूमकर सब चीजा का जायजा लेता। पानी के झरन की तरह नीचे को लटकी हुई उसकी सफेद लम्बी दाढी स उसका चेहरा और भी गम्भीर दिखायी देता। पगडी

भी वह आम सिक्खा की तरह बडी और नोक्दार नही बाँधता था, बल्कि उसका साफा लम्बान मे छोटा होता था, जिसे वह गोल गोल चक्कर देकर सिर पर लपट लेता। तहबन्द के बजाय वह ऐसे मौका पर चूडीदार पैजामा पहनता, जिस पर लम्बा खद्दर का कुर्ता होता था और खद्दर का ही गहरे नीले रग का पटका उसके कन्धे से कूल्हे तक लटका होता, जिसम आम तौर पर नौ इच लम्बी कृपाण फँसी रहती। यह कृपाण लडने भिडने के लिए नही थी, बल्कि इससे और ही कुछ काम लिये जाते थे—मसलन, हलवे को पवित्र करने के लिए इसी कृपाण को उसमे घुमाया जाता था, या फिर जब लोहे के बाटे मे सिंघो को छकाने के लिए अमृत बनाया जाता तो पानी म खाड घोलने के लिए इसी कृपाण से काम लिया जाता था।

सुरजीत जानती थी कि जब घर के बडे बूढे जाग उठेंगे और घर म गहमा गहमी होगी तो उसकी नीद भी उखड जायेगी। चुनाचे उसने सहेलियो से मिलकर त्रजन का प्रोग्राम बनाया। जब बहुत सी औरतें या लडकिया मिल जुलकर चरखा कातती तो इसे त्रजन कहते थे। सर्दियो मे कभी कभी रतजगा भी होता, यानी लडकिया रात-भर एक साथ बैठकर अपना अपना चरखा कातती। कताई के साथ तमाम रात दुनिया भर के चुटकुले और किस्से कहानिया सुनायो जाती। अक्सर तो स्वर ले-स्वर मिलाकर पजाबी के गीत गाय जाते—अपने भाइयो के गीत अपनी सहेलियो के गीत, कभी कभी दबे दब प्रेम और विरह के गीत भी गाये जाते। शाम ही से पतले-पतले मीठे देशी गन्ना के गट्ठर छील छाल और धो धाकर अपने पास ही रख लेती। जब चरखा कातते-कातते हाथ थक जाते तो सब लडकिया टागें पसारकर बठ जाती और मजे मजे में गन्न चूसने लगती। ऐस मौका पर आपस मे चुहलबाजी चलने लगती—खीच-तान और छीना झपटी भी हो जाती। जो लडकिया ज्यादा चिढ जाती, वे एक दूसरे को असली या नक्ली प्रेमियो के ताने देने लगती।

अब की रतजगे का प्रोग्राम नही था। रतजग का मजा तो तब था जब उधर चिडिया चहचहाने लगे और इधर रतजगा करनेवाली लडकिया बिस्तरो पर लोट पोट हो जायें और फिर बडी बूढिया के 'जवानी मस्तानी' के ताना पर भी उठन का नाम न लें। अगर कोई कन्धा पकडकर झँझोडे

तो भी 'हूँ' के सिवा कुछ न कहें और फिर कसमसाकर नींद म डूब जायें, डूबती चली जायें। अब तो यही हो सकता था कि व ढाई-तीन बजे तक जाग उठें और नये मकान की ऊपरवाली मंजिल पर बन हुए चौबारे म अपना-अपना चरखा लेकर बैठ जायें। आखिर जब नींद खराब होनी ही है तो फिर क्या न वह वक्त हँस बोलकर काटा जाये।

शाम को ही सब लडकियो ने अपना अपना चरखा चौबारे म पहुचा दिया। सुरजीत ने उन चरखा को आडा करके एक दूसर के बराबर एक ही कतार म ऐस खडा कर दिया कि जैस उनकी घुडदौड होन जा रही हो। फातिमा सुरजीत के ही घर मे सोयी थी। सुबह तीन बजे सुरजीत की मा ने दोनो सहेलियो को जगा दिया। वे जाग तो पडी, लेकिन इतने जोर की ऊँघ आ रही थी कि वे एक दूसरी को कोहनियो के टहोके दे-देकर कहने लगी, 'पहले तू उठ।"

हो सकता था कि वे एक दूसरे को यही कुछ कहती कहती फिर से सो जाती, लेकिन इतने म दो और सहेलियो ने उनकी डयोढी का दरवाजा आन खटखटाया। तब मा ने पुकारकर कहा, 'लो, यह परिया तो अभी तक सोयी पडी है, रक्खी और शीला घर से चलकर आ भी गयी।"

यह सुनकर सुरजीत और फातिमा झेंप गयी और वे एकदम ही उठ बैठी। रक्खी ने सुरजीत की माँ की बात सुन ली और वह उन दोनो के सिरहाने पहुँची और चमककर बोली, 'देखो तो इन लाडो रानियो को! दूसरो को तो घर पर बुला लिया और आप पडी ऊँघ रही हैं!"

फातिमा ने झूठ मूठ बिगडकर बालो की लटो को समेटते हुए कहा, "वाह वाह! सोने की भी एक ही कही! हम सो कहा रही है, हम तो कभी की जागी हुई हैं! यू ही पडी पडी खुसर फुसर कर रही थी।"

शीला बोली, "अच्छा-अच्छा, हमे मालूम है जो खुसर-फुसर तुम करती हो! अब सीधी तरह उठ बैठो, नही तो बुरा हो जायगा, हा! फिर न कहना!'

हो सकता था कि इसी बात पर तू तू मैं मैं हो जाती। एक आध की चोटी नोची और घसीटी जाती लेकिन घर की बडी बूढी औरतो के कारण लडकियो को धमाचौकडी मचाने की हिम्मत नही हुई।

सुरजीत ने जल्दी से उठकर अपने हाथ से फातिमा का मुह बन्द कर दिया, ताकि वह कुछ कहने न पाय। उसने होठो पर उँगली रखकर सहेलियों को चुप रहने का इशारा किया। फिर बोली, "भई, अब ज्यादा देर नहीं करनी चाहिए। भला इस तरह मजा ही क्या आयेगा ? चलो, अब ऊपर चलो।"

अब रक्खी अपना हाथ झटककर बोली, 'पर जो मैं कहती हूँ कि और लड़किया कब पहुचेंगी ?"

फातिमा बोली, 'हा, यह भी ठीक है। मैं तो समझती हू कि जो अभी तक पडी सोती है वे सोती ही रह जायेंगी।'

यह सुनकर सुरजीत चौंकी। बात सच्ची थी। उसने सोचा कि इस तरह तो मजा ही किरकिरा हो जायेगा। तब उसने फातिमा से कहा, 'अरी फातिमा ! जा, तू सबको बुलाकर ले आ। मैं इतने म चिराग जलाकर ऊपर चलती हूँ।

सुरजीत की बात सुनकर फातिमा ने दोनो हाथ अपने गालो पर रख लिये और मुह अठन्नी की तरह गोल करके बोली, "उई अल्ला, मैं जाऊँ !"

सुरजीत बोली, 'अरी तू चली जायेगी तो क्या तेरे पैरो की मेहँदी उतर जायेगी ?"

अब फातिमा ने अपने दोनो हाथो की नाजुक उँगलिया एक दूसरी म उलझाकर उन्हे सीने पर रख लिया और आखो की पुतलिया तीन चार बार जल्दी दायें बायें घुमायी बाह री सेठानी ! अगर मेरे अब्बा या भाई ने देख लिया तो मेरा अचार ही डालकर छोडेंगे ! कहेंगे कि तू तो सुरजीत के पास सोने गयी थी और अब अकेली अँधेरी गलियो मे घूम रही है !'

सुरजीत बोली, "ए ! तू मरी क्यो जाती है ? जा, ले जा रक्खी को अपने साथ। बल्कि तुम तीनो ही चली जाओ। अभी तो मुझे ऊपर झाड़ू भी देनी है। तुम्हारे लौटते तक यह काम हो जायेगा।"

तीनो सहेलिया बुलबुलाती और खी खी करती हुई वहा से चल दी।

सुरजीत ने चौमुखे यानी चार बत्तियोवाले बडे मिट्टी के चिराग को उठाकर तेल के कनस्तर के पास रखा और फिर लोहे की लम्बी डण्डीवाली तेलकी से निकाल निकालकर डेढ पाव या आधा सेर के करीब तेल चिराग

के पट मे भर दिया। रूई की चार बत्तिया हथेलियो पर बटकर उन्हे तेल मे तर किया और चिराग के चारो कोनो पर जमा दिया। बत्तिया जल उठी तो सुरजीत ने बायी बगल मे झाड़ू दबा ली और बायें ही हाथ म चिराग उठा लिया। दायें हाथ से चिराग को हवा के तेज़ झोका से बचाती हुई वह सीढियां चढ़ने लगी।

कमरे मे पहुँचकर उसने चिराग को खिडकी की चौखट पर रखा। अभी खिडकी बन्द थी। उसने झाड़ू देकर चिराग को कमरे के बीचोबीच एक ऊँचे लकडी के चिरागदान पर रखा। रात ही उसने घर की सभी पीढिया और पास के बने हुए गोल गोल मूढे उस कमर म इकट्ठा करके रख दिये थे। अब उसने उन पीढिया को दीवार के साथ बिछा दिया और उनके आगे चरखे रख दिये। सुरजीत के बैठन का एक पीढा था जो निवाड से बुना हुआ था, उसके पाये रगदार थे और पीठ पीछे की लकडिया भी लाल हरे रगो से रँगी हुई थी। पीठ की बुनाई सफेद सुतली से की गयी थी। सुरजीत का चरखा भी बिलकुल नया था और खूबसूरत रगो से रँगा हुआ था। उसमे छोटे छोटे घुघरू लगे थे, चुनाचे ज्योही हत्थी घुमायी जाती, चरखा 'छन' से बोलता और रुकने पर भी 'छन' की आवाज़ आती।

वह अपनी टोकरी मे रुई की पूनिया के छोपे रखकर बैठ गयी। ज्यो ही उसने चरखे को दो तीन बार घुमाकर सूत निकाला नीचे सहन म उसकी सहेलियो के आने की आवाज सुनायी दी। उनकी आवाज़ो से ही पता चलता था कि वे हिरनियो की तरह बिदकती सिमटती, कभी भागती, कभी रुकती, सहन से गुज़रकर सीढियो पर चढने लगी हैं। सुरजीत ने खिडकी खोलकर दरवाज़ा भेड दिया था, ताकि हवा कमरे मे फर्राटे के साथ आकर चिराग को न बुझा दे।

सहेलिया आयी तो उन्होंने दरवाज़े के दोनो तख्तो को यू ढकेल फेंका जैसे वे वहाँ किसी चोर को पकडने आयी हो। आगे-आगे बन्तो थी, देखने मे तरहदार लेकिन उसके मुँह का फलाव बहुत बडा था। दात भी काफी चौडे चौडे थे। फिर भी वह बुरी नही लगती थी। उसने आते ही बाँह परो की तरह फडफडाकर चुदरी को सँभालते हुए कहा, "हाओहाय! तूने दरवाज़ा क्यो बन्द कर रखा है?"

रक्खी बोली, "दरवाजा ब द देखकर ब तो ने मुझसे कहा कि जरूर कोई और भी अ दर है !"

सुरजीत न उनकी शरारत समझकर माथे पर दो-तीन खूबसूरत स बल डाल दिये "और कौन होती अ दर ?"

रक्खी बोली, "होती नही, होता ! मेरा मतलब है कि ब तो का यही मतलब था "

"हाओहाय !' ब तो बोल उठी, "मैंने यह कब कहा था। देखो, सुरजीत, यह हम दोनो को लडाना चाहती है, इसकी बातो मे मत आना।'

अब तक लडकिया अपने-अपने चरखे के आगे बैठ चुकी थी, या बैठ रही थी। उ होने अपनी अपनी बाँहो मे दबी हुई टोकरिया निकाली जिनमे रुई की पूनियाँ रखी थी। एक एक पूनी उँगलियो मे थामकर जो हत्थी को घुमाया तो तकले की नोक से दूध की पतली-सी धारा ऊपर को उठती चली गयी।

सुरजीत ने निचला होठ पल भर के लिए दाँतो मे दबाया और घनी भौंहो-तले मोटी-मोटी काली आँखो से उसने रक्खी को घूरकर देखा, "रक्खी की बच्ची, आजकल तू बहुत पर पुर्जे निकाल रही है !"

फातिमा बोली, "लेकिन, सुरजी, तुझे यह भी पता है कि ये पर-पुरजे निकलते कैसे हैं ?

रक्खी बोली "अरी मालजादी, सुरजी से क्या पूछती है ? तू ही बता दे ना !"

इस पर फातिमा ने अपने अँगूठे पर पहली उगली घुमाकर जमायी और हाथ को दो तीन बार दायें बायें घुमाकर, ऊपरवाले होठ को सँवारते हुए, दाँतो मे से पिसती हुई आवाज निकाली, 'उई री मेरी ब तो ! आज-कल हवा मे उडता है तेरा दिमाग ! ज्यादा बढ-बढके बातें बनायेगी तो फिर बीच चौराहे के भाडा फुटौवल कर दूगी तेरा ! सारी शेखी किरकिरी हो जायेगी हा ! नही तो फिर न कहियो !"

रक्खी ने अपनी बाह हवा मे उछाली "अरी ! यह चौधरापा किसी और को दिखाइयो ! हमसे नही चलेगी तेरी यह बाजीगरी !"

अब सभी लडकियो को मजा आने लगा, क्योंकि ये दोना ही सबसे

ज्यादा चचल और बातें बनानेवाली थी।

फातिमा ने बिल्ली की तरह गुर्राकर कहा, "ए रानी पिंगला ! अगर तुझ पर चलाकर दिखा दू यह बाजीगरी, तब मान जायेगी ना हमे !"

रक्खी बोली, "जा जा ! अपने होतो सोतो को मना ले जाकर !"

फातिमा बोली, "अरी हमारे तो कोई होते सोते हैं ही नही ! जिसके हैं, उसको सभी देख लो ! कैसी लाल मिच हो रही है इस समय ! हा नही तो ! अरी, लाल मिच का क्या ठिकाना, मुह मे जाये तो जलन, पेट से निकले तो जलन।"

रक्खी बोली, "हा, हा, हम तो लाल मिच हैं। लाल मिच की ही तरह जले फुकें, पर तुझे काह की फिक्र ? तू तो किसी क सीने पर सिर रखकर अपनी जलन दूर कर लेती है !"

अब फातिमा ने उँगली हिला हिलाकर बडा गुस्सा प्रकट किया। उसके गले की रगें फूल आयी 'अब देख ले ! तू बढ बढकर बातें बनाय जा रही है, लेकिन मैं फिर भी कहती हूँ कि मुह को लगाम दे ! अभी जो भाँडा-फुटौवल कर दू तो '

इन लडाई झगडो मे सारा गुस्सा दिखावे का होता था। हर लडकी अपनी सहेलियो मे इस किस्म की सच्ची या झूठी वदनामी से दिल ही दिल म मजा लेती थी। इसलिए जब एक लडकी दूसरी को इस किस्म का ताना देती तो वह चुप रहने के बजाय उस और ललकारती ताकि वह किसी असली या फर्जी प्रेमी का उस पर इलजाम रख दे और उसकी सहेलियाँ समझ जायें कि वह भी इतनी मनमोहनी है कि उस पर भी युवक जान देते हैं। रक्खी का भी कोई प्रेमी नही था, इसलिए उसने अपनी सहेलियो म ऐसी मीठी वदनामी का मजा लेन के लिए फातिमा को तेज-तेज वातो के कचोके देने शुरू किये। बोली, "अरी, तू तो जब बालिश्त-भर की लौंडिया थी, तभी से तूने लटकाा मटकना शुरू कर दिया था ! और अब तो, अल्लाह खैर करे, बडे-बडे नम्बरी साँड तुझे देख-देखकर डकराया करते हैं !"

फातिमा कब हार माननेवाली थी ? यह ठीक है कि सुलतान स अपन प्रेम को उसन बीच खेत के स्वीकार नही किया था, लेकिन सभी जानती थी कि मामला 'दाल मे कुछ काला होने' से और कई मजिल आगे बढ चुका

था। चूंकि पानी सिर से गुज़र चुका था, इसलिए फातिमा का हौसला भी बहुत बढ गया था। अब उसे किसी के तानो से डर नही लगता था। चुनाचे उसने बडे प्यारे अन्दाज़ से अपना अँगूठा हवा मे नचाकर कहा, "हमारे ठेंगे से! अरी, हम तो जो करते हैं, बीच मैदान के करते हैं और जो बात है, सो बीच खेत के मानते हैं, लेकिन तू अपनी तो कह, छछूदर कहीं की! अन्दर-ही अन्दर सारे पापड बेलकर जब घर से निकलती है तो दूध और शहद मे नहायी हुई!"

रक्खी बोली, "हाय रे! क्या लतर लतर ज़बान चलाती है! खुद तो कीचड मे लथपथा रही हो और दूसरो पर छीटे मुफ्त म! इसी को कहते हैं ना, खुद तो डूबे हैं सनम, तुझे भी ले डूबेंगे!'

यह सुनते ही फातिमा पीढी से ज़रा ऊपर उठकर और दोनो हाथ आगे फेंककर लगी दाद देने, "वाह वाह! क्या शेर निकाला है! सच है दिल पर चोट लगे तो शायरी भी आ ही जाती है!"

रक्खी कुछ पढी लिखी थी। नाक ऊपर को चढाकर कहने लगी, "अजी, यह शेर नही, एक मिसरा था, काला अक्षर भैस बराबर! बडी चली दाद दने!"

'चार अक्षर पढ गयी हो, इसका यह मतलब नही कि हम बिलकुल ही बेवकूफ समझने लगो और हमारी आख मे धूल झोकने लगो!"

"तुम तो उन लोगो मे से हो, जो अपनी आँखो मे आप ही धूल झोका करते हैं। किसी और को झोकने की ज़रूरत नही पडती!"

"अभी जो तेरा भाडा फूटोवल कर दू तो सारी शेखी धरी-की धरी रह जाये!"

"धुत्त! न जाने कब स ताने दिय जा रही है! अरी मैं पूछती हूँ कि तुझे जो मालूम है, सो खुलके कह क्यो नहीं डालती?"

"कह तो दू लेकिन रानीजी सी-सी करती फिरेंगी!"

"अरी, जब मुझे कोई एतराज़ नहीं तो तुझे क्या परेशानी है? सी सी मैं ही तो करूंगी ना!'

अब फातिमा न मोरनी की तरह सिर उठाकर सिवाय रक्खी के और सबकी ओर देखा, जैसे कोई भाषण दने जा रही हो। फिर शरारत स दाँत

निकालते हुए बोली 'वह भटटू है ना भटटू ?"

दो चार लडकियाँ बोल उठी, 'हा ! वही काला, भोडा, भद्दा भटटू न !"

अब फातिमा ने अपना हाथ अकडाकर रक्खी की ओर इशारा करते हुए कहा, 'बस वही तो है इसका वह !"

"हाओहाय !" बहुत सी लडकिया एकदम ही बोल उठी।

इस बात पर तो किसी को ज्यादा आश्चय नही हो सकता था कि उनम स किसी सहेली की किसी युवक से साज बाज हो, लेकिन यहाँ कुछ और ही गडबड थी। यानी रक्खी तो देखने मे अच्छी भली प्यारी-सी लडकी थी लेकिन भटटू तो ऐसा बेवकूफ और इतना बदसूरत था कि गाँव की मामूली स मामूली लडकी भी उसकी ओर देखना पसन्द न करे। असली बात तो यह थी कि रक्खी और भटटू का कोई ऐसा-वैसा सम्बन्ध नहीं था। बेशक वह उसके ताऊ का लडका था और उसका उनके घर में आना-जाना भी था लेकिन रक्खी ने तो कभी उसकी ओर नजर [illegible] नहीं था। और रहा भटटू, वह तो स्वप्न म भी रक्खी [illegible] का साहस नही कर सकता था।

जानने को तो फातिमा भी जानती थी और [illegible] कि उन दोना का आपस म कोई सम्बन्ध नहीं [illegible] की टाँग खीचना फातिमा के बायें हाथ का [illegible]।

फातिमा को उम्मीद थी कि रक्खी [illegible] भडक उठेगी। लेकिन रक्खी भी ऐसी [illegible] वह जानती थी कि अगर वह [illegible] तमाशा देखेंगी। क्रोध मे आना [illegible] खेलना था। रक्खी फातिमा का [illegible] चुनांचे उसने वही गम्भीर [illegible] घर मे आने जाने स मैं [illegible] जरूरत भी नही। वचाव [illegible] होता है कि हमारी [illegible] पर ही लटटू हो गयी। [illegible]

नही आयी ! इसीलिए बेचारी अपने मन का जहर इस तरह से निकाल रही है ! पुच्-पुच् ! मेरी बन्नो ! मैं खुद भटटू से अपनी सहेली की सिफारिश करूँगी ! हो सकता है इस बेचारी पर उसे तरस आ ही जाय ।"

ये बातें रक्खी ने कुछ ऐसे अन्दाज और गम्भीरता से कही थी कि लडकिया चहचहाकर हँसने लगी ।

पासा इस तरह पलटते देखकर फातिमा खिसिया-सी गयी । वसे तो सब सहेलिया जानती थी कि रक्खी ने जो तोहमत उस पर लगायी थी, वह बेबुनियाद थी, लेकिन एक बार तो भद्द हो ही गयी ।

सुरजीत से अपनी प्यारी सखी की यह बेइज्जती सहन न हो सकी । वह बोली, "रक्खी ! हम तुम्हारी और तो सब बातें मान सकते हैं, पर तुम्हारा यह कहना बिलकुल गलत है कि फातिमा को कोई पूछनेवाला नही ! ठीक है कि इसकी आँखें खराब रहने के कारण कुछ छोटी हैं, लेकिन फिर भी यह बिलकुल मेम लगती है, मेम ! यही कारण है कि इस समय गाँव का सबसे खूबसूरत जवान हमारी फत्ती के पीछे मारा मारा फिरता है !"

सुरजीत की इस बात पर फातिमा की आखो के सामने सुलतान की सूरत घूम गयी । उसने चरखा कातना छोड दिया और शरमाकर चेहरा दोनो हाथो मे छिपा लिया ।

अब तो उसकी सहेलियो ने उसे खूब छेडा । सब उठकर उसके पीछे पड गयी । किसी ने बगलो म गुदगुदाया और किसी ने रानो मे । वह सिमट-सिमटकर और पहलू बदल-बदलकर दबी हँसी हँसे जा रही थी । यह देखकर अमरो बोली, ' वाह री फातिमा ! दुलहन बनी नही, शरमाने अभी से लगी !"

बडी मुश्किल से सुरजीत ने सब लडकियो को पीछे हटाकर अपनी प्यारी सहेली को छुडाया ।

इस तरह महलियो की महफिल का आरम्भ हुआ । उसके बाद तो धीरे-धीरे महफिल और गरम ही होती गयी ।

अभी सूर्योदय नही हुआ था, लेकिन उषा ने पूरब का सुनहरा फाटक खोल दिया था और धरती पर प्रकाश की एक धूल सी छा गयी थी । कुछ चिड़ियों ने नींद भरी आवाज म अपनी अपनी बोलियाँ सुनानी शुरू कर

दी। इन्ही आवाजों म एक और आवाज भी आयी, जिसे सुनते ही सुरजीत और उसकी सखियाँ चरखे छोड-छोडकर खिडकी के पास जमा हो गयी।

गाँव स परे, मद्धिम रोशनी म कुछ लोगो का झुण्ड चब्बे की ओर चला आ रहा था। इनमे ज्यादा सख्या मर्दों की थी, गिनती की कुछ औरतें भी उनके साथ थी।

ग्रन्थीजी न सिर पर रगदार पायो का सजा-सजाया पीढा उठा रखा था जिस पर गुरु-ग्रन्थ साहब कई रेशमी रूमालो मे लिपटे रखे थे। ग्रन्थीजी अपने दोनो हाथो से पीढे को मजबूती से सँभाले नपे-तुले कदमो से बढते चले आ रहे थे। उनके पीछे पीछे एक और आदमी था जो चाँदी की मूठवाली चँवर अपने हाथ मे थामे था। वह बार-बार चँवर के वालो को 'गुर ग्रन्थ साहब' पर लहराता, ताकि कोई मक्खी या कीडा उन पर न बैठने पाये। जो लोग साथ-साथ थे, वे गाकर तो नही, लेकिन सुरीले स्वर म बोलते चल रहे थे।

एक गुट बोलता, "वाहे गुरु वाहे गुरु वाहे गुरुजी।"

दूसरा गुट कहता, "सतनाम, सतनाम, सतनामजी।"

सुबह के धुधलके म सफेद सफेद कपडोवाले ये लोग य दिखायी देते थे, जस बगुलो का झुण्ड खेता म स चला आ रहा हो।

उन्हे देखते ही लडकिया चिल्ला उठी सवारा साहब, सवारा साहब।"

इसके साथ ही सब लडकियाँ तेजी से चौबारे के बाहर निकली और सीढियो से यू उतरने लगी, जैसे पहाड स पानी का झरना गिरता है। वे भागती हुई उस रास्ते पर जा खडी हुइ, जिधर से 'सवारा साहब आ रहे थे। थोडी ही देर म जब 'गुरु ग्रन्थ साहब' की सवारी उनके पास से गुजरी तो लडकियो न दोनो हाथ जोडकर सिर नीचे को झुका दिये और खुद भी 'सवारा साहब के पीछे पीछे हो ली।

गैस अभी तक चमचमा रहे थे। सहन के अन्दर और शामियाने के नीचे एक सिरे पर बडा सा तख्तपोश रखा था, जिसके ऊपर दरी, दरी पर खेस और खेस पर उजली चादर बिछी थी। गुर ग्रन्थ साहब को उसी तख्त पर रख दिया गया और ग्रन्थीजी अपने गले म पडी हुई साफी को

सँभालते हुए 'गुरु-ग्रन्थ साहब' के निकट बैठने लगे तो पास्लासिंह ने अन्दर से घर का बना हुआ रंगीन आसन लाकर ग्रन्थीजी के नीचे रख दिया।

अब केवल एक आदमी ग्रन्थीजी के पीछे खड़ा होकर चँवर हिलाने लगा। बाकी लोग 'गुरु-ग्रन्थ साहब' के सामने बिछी हुई खूब लम्बी चौड़ी दरी पर बैठ गये। औरतों के बैठने के लिए अलग जगह छोड़ दी गयी थी, जहाँ सबसे आगे बड़ी-बूढ़ी औरतें बैठ गयीं, उनके पीछे बाल-बच्चेदार औरतें बैठीं और सबसे पीछे कुँवारी लड़कियाँ खुसर-फुसर करती हुई एक दूसरी के साथ खूब सटकर बैठ गयीं। औरतों के इस तरह बैठने का कोई खास कायदा तो बना नहीं था, लेकिन औरतें अक्सर बैठती ऐसे ही थीं। आगे बैठी हुई बूढ़ी औरतें, जिनके चेहरे सिकुड़कर छुहारे या हरड़ की तरह बन गये थे ज्यादातर नौजवान लड़कियों की हरकतों पर नज़र रखतीं। कोई बात ज़रा भी उनके आचार विचार के विरुद्ध हो जाती तो उनके सूखे हुए चेहरों की लकीरें और भी गहरी हो जातीं। कभी उनका भी ज़माना था जबकि उनके मन की भावनाएँ फौआरे की तरह उछलती थीं लेकिन उस ज़माने की बूढ़ी-खूसट औरतें इसी तरह उन पर भी कड़ी नज़र रखती थीं। उन दिनों में बूढ़ी चुड़ैलों को गालियाँ दे देकर मन ही मन में कहतीं कि इन कमबख्तों को कोई और काम ही नहीं रह गया है! उस समय तो ये औरतें उन बूढ़ियों का कुछ बिगाड़ न सकीं, लेकिन अब उसका बदला इन जवान लड़कियों से ले रही थीं।

ग्रन्थीजी ने रेशमी रूमाल हटाकर बड़े एहतियात से गुरु ग्रन्थ साहब को खोला। फिर वर्क उलटते पुलटते वह एक जगह रुके और ऊँची सुरीली आवाज़ में पाठ करने लगे।

अब गोया अखण्ड पाठ या देहातियों की बोली में 'खण्ड पाठ' शुरू हो गया।

पीछे बैठी बैठी लड़कियाँ पाठ के शब्दों को तो क्या समझतीं, अलबत्ता उन्होंने मन-ही मन ग्रन्थीजी की दाढ़ी की लम्बाई नापनी शुरू कर दी। थोड़ी ही देर में सारी कार्यवाही अपने बने-बनाये ढर्रे पर चलने लगी यानी चँवरवाला आदमी मुँह पर हाथ रखकर जमुहाइयों को रोकने की कोशिश करता हुआ चँवर को दायें बायें हिलाने लगा। ग्रन्थीजी सैकड़ों बार पाठ कर

चुके थे, इसलिए अब उनका ध्यान अधिकतर अपनी आवाज़ के सुरीलेपन पर लगा रहता मर्दों म कुछ तो सच्चे प्रेमी और कुछ अपने स उकताये हुए लोग चौकडी मारे चुपचाप बैठे थे, लेकिन उनके पीछे बैठे हुए आदमियो ने कई क़िस्म के विषयो पर अपने विचार प्रकट करने शुरु कर दिये— मसलन इस ग्रन्थी से पहले का ग्र थी पाठ कैसे करता था बसाखासिह जिस औरत को भगाकर लाया था अब वह कहाँ है धमपुरे म जो डाका पडा था उस सिलसिले मे डाकू पकडे गय या नही आदि आदि। रही औरतो की बातें तो वहा तो विषयो की कोई कमी ही नही थी। बडा की ये चुहलें देखकर लडकियो ने भी अपनी खुसर फुसर और खी खी जारी कर दी।

शुरुआत करनेवाली भी फातिमा ही थी। बोली, हाओहाय! भाभी लक्ष्मी, जानती हो क्या क्या कहती थी?

अमरो बोली, किसके बार म?

फातिमा ने ज़रा सा हाथ टेढा करके ग्रन्थीजी की ओर इशारा करते हुए कहा, 'अपने ग्रन्थीजी के बार म, और किसके बार म?"

कन्तो बोली क्या कहती थी?'

फातिमा बोली, "वह कहती थी कि ग्रन्थीजी की दाढी तो सफेद है, लेकिन दिल काला है मतलब यह कि दिल जवान है।

इसम न जाने ऐसी क्या बात थी कि सभी लडकिया बडे ज़ोर स खी-खी करके हँसने लगी। किसी न दुपटटे के कोने का गोला बनाकर मुह मे ठूस लिया, किसी की आखो म आसू आ गय।

अब रक्खी को फिर एक मौका मिला। उसने धीर स हाथ बढाकर फातिमा की चोटी को हलका-सा झटका दते हुए पूछा, 'मैं कहती हूँ कि तुम कल शाम सबको छोड छाडकर उधर क्या करन गयी थी?'

फातिमा बोली, "लो और सुनो! करन क्या जात? ज़रा घूमन गय थ।'

रक्खी बोली, 'अगर तुम ऐसी ही घुमक्कड बनी रही तो एक-न एक रोज़ ज़रूर कोई नया गुल खिलेगा।"

फातिमा बोली, "लो सुनो। ज़रा घूमने जाओ तो गुल खिल जाय। वह कैसे?'

रक्खी बोली, "यह ऐसे कि अगर कहीं गुनगान सर्तों में चव्व का सबसे सुन्दर नौजवान, जो तुम्हारे आस पास मँडराया करता है, मिल गया तो वह खुद ही नया गुल खिला देगा।"

फातिमा बोली, "भजो जाओ! तुम जरा अपना खयाल रखो, कहीं ऐसा न हो कि घर में बैठे बिठाये ही गुल खिल जाय।"

अमरो बोली, 'लेकिन फत्ती, घर में गुल खिलने का इतना डर नहीं, जितना खेत में।'

फातिमा बोली, "लो, मेढकी को भी जुकाम लगा! अरे, वह तो सुरजीत गुरुद्वारे जा रही थी तो जरा मुझे भी साथ लेती गयी।'

रक्खी ने हाथ घुमाकर उसकी बात काट दी, "हाँ, हाँ, सुरजीत ही तुम्हे अपने साथ ले गयी थी! उसे खाना जो हजम नहीं होता तुम्हें साथ ले जाय बिना?'

फातिमा बोली "ओहो! सामने ही तो सुरजो बैठी है। मुझ पर यकीन नहीं तो पूछ लो न इसी से!"

सुरजीत बेचारी जल्दी से इतना सफेद झूठ न बोल सकी। रक्खी ने उसकी झिझक का फायदा उठाते हुए चमककर कहा, "चल हट, चण्डाल कहीं की! तू खुद भी उलटे रास्ते पर चलती है और दूसरा को भी चलाती है!'

फातिमा ने अपने नाजुक नथुने फुलाकर कहा, "बस, बस, शरीफ़-जादी कहीं की! चार अक्षर क्या पढ गयी कि सबकी नानी बन बैठी! सब लोग तेरी ही तरह के नहीं होते। वही बात है कि शीशा देखो तो अपना ही मुह नजर आता है!'

रक्खी पहले से चोट खायी हुई थी, इसलिए उसने हार नहीं मानी। हाथ का कटोरा सा बनाकर दायें बायें घुमाते हुए बोली "हाय हाय मेरी बन्तो! अच्छा चल तो आज तेरी बेबे (मां) से कहूँगी कि यह तेरी साहबजादी खेतों मे फुदकती फिरती है और किसी रोज ऐसे जोर से फुदकेगी कि यहाँ से कई गाँव परे जा गिरेगी फिर हाथ नहीं आने की! बदनामी अलग होगी, इसलिए अपनी नूरजानी को जरा सँभालकर रखो!"

फातिमा बोली, "खुदा गंजे को नाखून नहीं देता! जाओ, यह भडामें

भी निकाल देखो ! मेरी वेवे मुझे अच्छी तरह जानती है। तू वहा स जूतिया न खा के आयी तो मेरा नाम बदल दीजियो !"

लडकियाँ तो लडकियाँ ही होती हैं इस वहसा-वहसी मे उन्हें पता ही नही चला कि उनकी आवाजें काफी ऊँची हो गयी थी। इतनी देर मे ग्रन्थी-जी कई बार उनकी ओर कडवी नजरें डाल चुके थे। आखिर उनका इशारा पाकर चँवर हिलानेवाले ने भारी आवाज मे कहा, "नी कुडियो !"

कुडियो (लडकियो) ने सिर घुमाकर उसकी ओर देखा, साथ ही वे समझ भी गयी कि उन्हें क्यो ललकारा जा रहा है। उधर से फिर आवाज आयी, "कुडियो ! यहा चुप करके बैठो या बाहर जाके गपोडे मारो !"

काबलासिंह ने भी अपनी बडी-बडी, लाल-लाल आँखो से लडकियो की ओर देखा, लेकिन वह कुछ बोल नही पाया था कि बाहर स उसका कारिन्दा आया और एक हाथ की ओट मे अपना मुह उसके कान के निकट ले जाकर न जाने क्या कहा कि काबलासिंह के माथे पर बल पड गये, उसके अबरू एक दूसरे से जुड गये। वह चुपके से उठा और उस आदमी के साथ सेहन के बाहर निकल गया।

बागडसिंह भी जाग उठा था। आज उसने नीद बहुत कम ली थी। लेकिन ढाई तीन घण्टे की नीद से उसकी तसल्ली हो गयी थी। जागने के बाद वह एक बार फिर मूरी भसो को देखने गया। उन्हें देखकर उसके मन को अजीब सी शान्ति प्राप्त हुई। वहा से वह ऐंठता हुआ काबलासिंह के मकान की ओर बढा।

बडे सेहन के बाहर भट्टिया खोदी जा चुकी थी। कल ही उनकी लीपा-पोती हो चुकी थी क्योकि अब हर रोज सबके लिए लगर चालू होनेवाला था। हलवाई आ चुके थे।

बागडसिंह ने सबको खाना पकाने का सारा सामान—आटा, दालें, प्याज मिच मसाले, लकडिया आदि कोठरी म स निकालकर दिया। आज वह जगली बटेर की तरह खुश था। बडी फुरती से कभी इधर, कभी उधर को जाता। हर जगह लोग उसे 'सरदारनी सरदारजी' कहकर बुलाते और वह फूला न समाता। वह केवल काबलासिंह को अपना मालिक मानता था। उसी एक आदमी का वह नौकर था, किसी और से उसका कुछ

लगी, और दूसरा हाथ उठाकर उसने दीवार पर गड़े हुए लकड़ी के खूंटे पर रख दिया।

बागड़सिंह के मुंह से ये शब्द बेअख्तियार ही निकल गये थे। आज तक वह कभी अपने मालिक के सामने इस तरह मुंह फाड़कर नहीं बोला था।

काबलासिंह ने अपनी बाहर की ओर उभरी हुई, उबली-उबली-सी बड़ी-बड़ी अंगारा-आँखें बागड़सिंह की नाक की जड़ पर गाड़ते हुए भारी आवाज़ में पूछा "तो तुम समझे नहीं कि मैंने क्या कहा भूतनी देया? क्या यह बात मुझे फिर समझानी पड़ेगी? समझाऊँ? मालूम होता है कि आदमियों की बोली तेरी समझ में नहीं आती!"

बागड़सिंह ने काबलासिंह की घने बालोंवाली कलाई के आगे लोहार के बड़े हथौड़े जैसे कसे हुए घूंसे पर नज़र डाली तो उसे ऐसे लगा, जैसे अभी वह मुक्का बम के गोले की तरह उसके जबड़े पर आन गिरेगा। वह दो कदम लड़खड़ाकर पीछे हटा और हकलाते हुए बोला, "जी, सरदारजी, मैं समझ गया जी।'

बागड़सिंह का तो दिमाग ही चकरा गया था। सिक्ख जाट को दो चीजें बहुत प्यारी होती हैं—एक उसकी लाठी और दूसरी उसकी घोड़ी। अगर इन चीजों में से एक भी कोई उससे छीन ले तो ऐसे आदमी को मर्द कहलाने का कोई हक नहीं रह जाता। अगर ये चीजें चोरी भी हो जायें तो भी डूब मरने की बात होती है। मामला बड़ा गम्भीर था—बागड़सिंह की समझ में नहीं आ रहा था कि काबलासिंह की घोड़ी को उड़ा ले जाने की हिम्मत किसने की?

वह घोड़ी इलाके-भर में मशहूर थी। काली साटिन की तरह स्याह—सफेदी का उसके बदन पर नाम नहीं था। सिर्फ जब वह अपनी पुतलियों को बड़ी अदा से दायें-बायें या ऊपर नीचे घुमाती तो आंखों की दमकती हुई सफेदी दिखायी दे जाती। बड़ी मजबूत, सुडौल बदन की, हवा से बातें करनेवाली इस घोड़ी को शायद ही इलाके का कोई आदमी न पहचानता हो। जब पहाड़-जैसा काबलासिंह उस पर सवार होकर निकलता तो घोड़ी की फुर्ती का अन्दाज़ ऐसा होता था, जैसे उसकी पीठ पर केवल एक तिनके का बोझ हो। बागड़सिंह तो यह समझ बैठा था कि अगर उस घोड़ी को यूं ही

खेतो मे हाक दिया जाय तो वह कई कोस का चक्कर काटकर वापस आ सकती थी। किसकी इतनी हिम्मत थी कि घोडी का रास्ता रोक सके, उसे उडा ले जाना तो दरकिनार !

लेकिन आज वह अपने कानो से एक अनहोनी बात सुन रहा था। इसमे सन्देह नही कि जिस किसी ने यह हरकत की थी, उसके सिर पर मौत अपने काले पर फैलाये मँडरा रही थी।

इधर बागर्डसिंह के दिमाग मे यह विचार चक्कर लगा रहे थे, उधर काबलासिंह ने बादल की तरह गडगडाकर पूछा, "यह उल्लू की तरह आखें फाडे टुकर टुकर क्या देख रहे हो ?"

बागर्डसिंह ने चौंककर कहा, "सरदारजी, कब चोरी गयी घोडी ?"

इस पर काबलासिंह का चेहरा लाल-भभूका हो गया। उसने कूल्हे से हाथ उठाकर अपनी मोटी लम्बी उँगली ऐसे बागर्डसिंह की ओर तानी, जैसे भाला खीचकर मार रहा हो। और मुह से थूक के छीटे छाडते हुए बोला, "घोडी कब चोरी गयी, बँधी थी या खुली, खेतो मे थी या तबेले मे, इन बातो का पता लगाना तुम्हारा काम है, मेरा नही !"

अब बागर्डसिंह ने महसूस किया कि वह एक पल भी और रुका तो उसकी खैर नही। चुनाचे वह फौरन ही भाग निकला। काबलासिंह के सामने से तो वह भाग आया, लेकिन अब उसकी समझ मे न आ रहा था कि वह करे तो क्या करे, जाये तो कहा जाये।

इतने मे सामने से बेलासिंह आता दिखायी दिया। वह बागर्डसिंह की बिगडी हुई शक्ल देखकर हैरान रह गया। अभी-अभी वह दोनो भूरी भसें देखकर चला आ रहा था। वह खुश था और बागर्डसिंह को यह बताने आया था कि इस बात के लिए वह उसका कितना आभारी था ! लेकिन बागर्डसिंह की यह शक्ल देखकर वह झिझकते हुए बोला, "क्या बात है, बागर्डसिंहजी ?"

"बागर्डसिंह के बच्चे ! बडा खराब काम हो गया है !"

"खराब काम ? कैसा खराब काम ?"

बागर्डसिंह डाँट खाकर आया था, इसलिए उसका दिमाग बिगडा हुआ था। अब यह जरूरी था कि वह दूसरे आदमियो को भी वही गालियाँ सुनाये

जो स्वय उसे सुननी पडी थी। उसने गुर्राकर कहा, "तेरी माँ को चोर ले गये हैं! वह घोडी थी ना सरदारजी की, बस वही गायब हो गयी है। तुम कल से रह थे मस्त थे, जो न भी मिलती तो इतना बवण्डर न होता। लेकिन घोडी का चला जाना तो बस, समझ लो, मुसीबत है मुसीबत!"

यह सुनकर बलासिह अपनी टाँगो पर खडा न रह सका। उसने सँभलने के लिए पास ही बनी मर्वेशिया की चारवाली खुरली का सहारा लिया। उसकी यह हालत देखकर बागडसिह को और ताव आया। उसने मुह फाडकर पूछा, क्या ओय? तून वह घोडी कहीं देखी है या नही?"

बलासिह न अपने गरीबान म उँगली फेरत हुए कहा "नही, बागडसिह सरदार, मैंन घोडी नही देखी।'

इस पर बागडसिह न उसका बाजू पकडकर इतने जोर से खीचा कि वह लडखडा गया और गिरते गिरत बचा। साथ ही बागडसिह ने कहा, "चल, बटा! अगर घोडी न मिली तो समझ ले कि तेरी खैर नही!'

यह कहकर बागडसिह लम्बे लम्ब डग भरता हुआ वहाँ से चल निकला।

बलासिह नाटा था। उसकी टाँगो की लम्बाई भी बहुत कम थी। चुनाँचे उसे भाग भागकर बागडसिह का साथ देना पडता था।

उन्होन घोडी को हर जगह तलाश किया—बाडे म, तबले म, गुरुद्वारे के बागीचे म, कब्रिस्तान की झाडियो म, आस-पास के खेतो मे, लेकिन अफसोस, घोडी कही नही मिली।

सब तरफ से निराश होकर जब बागडसिह वापस लौटा तो उसे एक बार फिर कावलसिह के सामन बयान देना पडा।

कावलसिह ने पूछा, "क्या कुछ पता चला घोडी का?'

"घोडी तो तबेले क अन्दर ही बधी थी।"

"उसे किसी ने बाहर घूमते या चरते तो नही देखा?'

'जी, नही, तबले के कारिन्दे बताते हैं कि घोडी तबेले के सहन म बाधी गयी थी। सहन का दरवाजा बाहर से स्वय इन्दरसिह ने बन्द किया था।"

"तो इसका मतलब यह हुआ कि चोर ने दरवाजे की कुण्डी खोलकर अन्दर से घोडी को खूटे से खोला। इस तरह वह सबकी आखो म धूल झोक-

कर उसे ले गया ।"

"जी हा ।"

"जी हा के बच्चे ! सवाल तो यह है कि सब लोग कहा मर गये थे ?"

"भोग रखने की तैयारिया हो रही थी, इसी सम्बन्ध मे अधिकतर कारिन्दे इधर चले आये थे । तबेले का किसी को खयाल ही न रहा ।"

"मुझे मालूम नही था कि तुम लोगो का दिमाग आसमान पर चढ गया है । लेकिन इतना याद रखो कि अगर घोडी न मिली तो तुममे से किसी की खर नही !"

बागडसिह ने मुजरिमो की तरह सिर नीचे झुका लिया । काबलासिह ने फिर उसी तरह बिगडकर कहा, "मैं पूछता हूँ कि अब घोडी तो चोरी चली गयी, लेकिन उसकी तलाश कैसे की जाये ?"

उस समय जल्दी मे बागडसिह को और कुछ न सूझा । एकाएक बूडसिह का खयाल आया । वह फौरन बोला, 'मेरा खयाल है कि मैं जरा बूडसिह स मिल लू ।"

"बूडसिह ? कौन ? वही बुड्ढा ?"

"जी हा ।"

"वह भी महाहरामी है । उससे क्या पता चलेगा ?"

"अजी, हरामिया को ही तो हरामियो का पता होता है । मेरा विचार है कि वह जरूर कोई न-कोई रास्ता निकालेगा ।"

"तुम्हारा यह खयाल है तो ठीक है । बेशक उससे भी मिल लो । हो सकता है, तुम्हारे पल्ले कुछ पडे ।"

बागडसिह फौरन वहा से हट गया, क्योकि काबलासिह के सामने वह कुछ परेशान ही रहता था । उसन सोचा कि चलो, जान सस्ती छूटी ।

बाहर आया तो खाने का समय हो चुका था । लेकिन घोडी की इतनी फिक्र थी उसे कि वह वहा एक पल भी नही रुक सका । उसने तबेले मे जाकर एक घोडे पर काठी डाली और फौरन सवार होकर बूडसिह के गाव की ओर चल दिया ।

बूर्डसिंह अपनी पुरानी जगह पर बैठा खाना शुरू ही करनेवाला था कि ऊपर से बागर्डसिंह पहुँच गया। उसे देखते ही बूर्डसिंह ने कहकहा लगाया और बोला, "आ बागड्या! बड़े अच्छे समय पर आया! मैं खाने ही जा रहा था।"

पास ही बूर्डसिंह की बेटी बैठी थी जो बाप के लिए दोपहर का खाना और मट्ठा लायी थी।

बागर्डसिंह ने घोड़े से उतरकर भारी स्वर मे कहा, 'हा, भाई, भूख तो मुझे भी लगी है, लेकिन बौखलाहट मे खाना खाने के लिए भी नही रुक सका।"

यह कहते-कहत बागर्डसिंह बुड्ढे के साथ ही चारपाई के दूसरे सिरे पर बठ गया। बूर्डसिंह ने पूछा, "यार! तुम्हारा मुह क्या लटका हुआ है? यह कसी शक्ल बना रखी है तुमने? तुम्ह तो खुश होना चाहिए।'

"खुश क्या खाक होऊँ?"

'क्या? वह भसें फिर चोरी हो गयी हैं क्या?"

"नही यार, अबकी बहुत बडी दुघटना हुई है। मैं तो कहता हूँ कि अगर काबलासिंह की लडकी भी घर से भाग जाती तो शायद इतना बवण्डर न होता या कम से-कम मरी यह हालत न होती।"

बूर्डसिंह ने बेपरवाही स उसकी ओर देखा। उसने सोचा कि बागर्डसिंह आजकल जरा जरा सी बात पर बहुत जल्दी परेशान हो जाता है। उसने थाली बागर्डसिंह की ओर बढाते हुए कहा, 'लो, रोटी खाओ।"

बागर्डसिंह ने चुपचाप रोटी का निवाला तोडा और उसमे भुजिया लपेटकर मुह मे डाल लिया।

बूर्डसिंह ने भी रोटी खानी शुरू कर दी और मुस्कराकर बागर्डसिंह की ओर दखते हुए बोला, 'बागर्डसिंह! मैं देखता हूँ कि आजकल तुम जरा-जरा-सी बात पर हिम्मत हार जाते हो।'

यह सुनकर बागर्डसिंह का हाथ रुक गया। उसने मुह मे पडे निवाले को भी नही चबाया और फिर कुछ खुरदरी आवाज मे बोला, "नही, भाई, यह बात नही है। कल तो भसें चोरा चली गयी। रात कितनी मुसीबत के बाद भैंस लाकर बाधी तो सुबह उठकर पता चला कि अब नयी मुसीबत

खड़ी हो गयी।'

"नयी मुसीबत कैसी ?'

"काबलासिंह की घोडी चोरी हो गयी।'

यह बात सुनकर तो बूर्डासिंह भी हक्का बक्का रह गया, "यह तुम क्या कहते हो ? भला घोडी कैसे चोरी हो सकती है ?"

'यह तो मैं नही जानता कि कैस चोरी हो सकती है, लेकिन चोरी हो गयी है। मजे की बात यह है कि चोर तबेले में घुसकर सेहन म खूटे से बँधी हुई घोडी को खोलकर ले गया।"

'कमाल है।

'कमाल तो है ही। लगता यू है कि किसी की काफी अरसे से उस घोडी पर नजर थी। लेकिन यह असम्भव मालूम होता है क्योकि अगर किसी बदनीयत की पहले मे ही घोडी पर नजर होती तो हम पिछले दिना उसे घोडी के आस-पास मँडराते जरूर देख लेत।"

"यह एक आदमी की कार्यवाही नही हो सकती। सम्भव है कि पाच-छ चोरो की टोली हो।"

हा, यह ज्यादा मुमकिन लगता है, क्याकि अकेले आदमी की तो इतनी हिम्मत ही नही हो सकती कि वह तबेले के नजदीक फटक भी पाये।"

और मुझे यह भी लगता है कि यह काम रावी-पार के किसी आदमी ने किया होगा। माना, तबेला गाव से जरा परे हटकर है, लेकिन इस इलाके के लोगो को यह तो मालूम है ही कि इस तबेले और इस घोडी का मालिक काबलासिंह है।'

यही तो मुसीबत है। भसो की बात कुछ और थी। हो सकता है कि उन चोरो को यह मालूम न रहा हो कि भूरी भसें काबलासिंह की हैं। लेकिन घोडी के बारे मे तो एसा शक हो ही नही सकता।'

यही बात ठीक मालूम होती है कि रावी पार के डाकू इधर आये होगे। हो सकता है कि कही डाका डालकर ही आ रहे हो। रास्ते मे घोडी पसन्द आ गयी और वे उसे भी लेकर चलत बने। काबलासिंह ने तो तुम लोगो की नाक म दम कर रखा होगा।"

"तुम नाक म दम करने की बात कहते हो, मैं तो कहता हूँ अगर

घोड़ी न मिली तो हमारी ऐसी गत बनेगी कि कुछ न पूछो ! हो सकता है कि मेरी नौकरी ही छूट जाये।"

"तुम्हारी काबलासिंह से भी तो कोई बातचीत हुई होगी ? उसने बताया नही कि अब आगे क्या करना है ?"

"अरे, वह तो मुझी से पूछने लगा कि बता, अब क्या करें !"

"तो, बरखुरदार, तूने क्या कहा ?"

"घबराहट मे मुझे और तो कुछ नही सूझा, बस, तुम्ही याद आये। मैंने कह दिया कि चलकर जरा बूडसिंह की सलाह लेता हूँ।"

"अच्छा तो उसने क्या कहा ?"

"वह बोला कि बूडसिंह तो खुद ही हरामी है, वह तुम्हारी क्या सहायता करेगा ?"

बूडसिंह ने खुश होकर जोर का कहकहा लगाया, "अच्छा, तो फिर तूने क्या जवाब दिया ?"

"मैंने कह दिया कि हरामी को ही तो हरामियो की खबर रहती है।'

अब बूडसिंह ने और भी जोरदार कहकहा लगाया और फिर बागड़-सिंह के कधे पर थपकी देते हुए बोला "बेफिक्र रहो, बरखुरदार ! आज ही दिन-ढले हम लोग बाहर निकल चलेंगे और जिन जिन आदमियो से इस किस्म की खबर मिल सकती है, उनसे मुलाकात करेंगे। वाहगुरु ने चाहा तो कुछ न कुछ पता निकल ही आयेगा।"

इसके बाद जब खाना खत्म हो गया तो इधर उधर की दो चार बातें करने के बाद बागड़सिंह वापस कब्बे को लौट गया।

जब दिन ढला तो बागड़सिंह ने घोडे पर जीन कसी। बूडसिंह से जो बातें हुई थी, काबलासिंह को बतायी। फिर वह घोडे पर सवार हुआ और बूडसिंह के तबेले की ओर रवाना हो गया।

बूडसिंह भी घोडे पर काठी जमाये तयार ही बठा था। बागड़सिंह के पहुँचने पर उसने खडे होकर पहले अपने तहब द के पल्लुओ को ढीला किया फिर बल वगैरह सँवारे और दोना पल्लू खींच और कसकर अ दर ठूस लिये। उसके बाद वास्कट पहनी, फिर चबूतरे पर चढा और वहाँ से घोडे की पीठ पर सवार हो गया।

चलते चलते पहले वे वरियामसिंह तरखान के घर पहुँचे। उनके आवाज़ देने पर एक छोटा-सा लडका बाहर निकला। बूर्डसिंह ने पूछा, "क्यों, काका, तेरा बाप है घर मे ?"

"हा।"

बूर्डसिंह ने घोडे से उतरकर अपनी चारो उँगलियो से बच्चे की ठुड्डी को छूते हुए कहा, "अच्छा तो, बेटा, जाओ, बाप को बाहर बुला लाओ। कहना, बूर्डसिंह आया है।"

लडका घर के अन्दर घुसा तो बागडसिंह ने कहा, "यार, ये बढई लोग तो ऐसे कामो में नही पडते। जाट कौम मे ही बडे बडे धाकडबाज़ होते हैं।"

"तुम ठीक कहते हो। लेकिन इस वारियामे को मामूली आदमी न समझो। बडा काटा है यह आदमी। जानदार ही नही है बल्कि इसकी अकल भी खूब चलती है। उडती चिडिया के पर काट लेता है।"

बागडसिंह को कुछ आश्चय हुआ। उसने कहा, 'लेकिन, भई, इसका नाम तो कभी सुनने मे आया नही।"

'अरे, यार वही बात है कि बद अच्छा, बदनाम बुरा। मैंने बताया ना कि आदमी होशियार है, इसीलिए इसके कारनामो का धुआँ भी नहीं निकलने पाता।"

ये बातें हो ही रही थी कि वरियामसिंह बाहर निकला। बागडसिंह ने देखा कि वरियामसिंह निकलते कद और इकहरे बदन का फुर्तीला आदमी था। इस समय उसके शरीर पर सिवाय तहबन्द के और कोई कपडा नहीं था। उसकी आयु चालीस वष से ऊपर ही होगी। उसकी छाती पर कुछ-कुछ सफेद बाल भी दिखायी दे रहे थे। सिर पर बालो का बडा सा जूडा था, जो एक ओर को ढलक गया था।

बूर्डसिंह और वरियामसिंह ने एक दूसरे के साथ बडे ज़ोर शोर से हाथ मिलाया। फिर बूर्डसिंह ने बागडसिंह का परिचय कराते हुए कहा, "यह बागडसिंह है, अपना यार। यह भी चब्बे से आया है।"

वरियामसिंह का चब्बे बहुत ही कम जाना हुआ था। वह जानता था कि बूर्डसिंह के गाँव से कुछ परे यह भी एक गाँव था। उसे कुछ

आश्चय भी हुआ कि ये बारह कोस से यहाँ क्या करने आये हैं। चुनांचे उसने पूछा, "आज यह इतना लम्बा चक्कर किस सिलसिले मे लगा है ?"

यह कहते कहते वरियाम ने दरवाजे की ओर इशारा किया और उन्हें घर के अन्दर ले गया। घोडो की लगामे एक छोकरे ने पकड ली, जो वरियामसिंह के पास काम सीखने आता था।

बूडसिंह ने घोडी चोरी हो जाने की घटना सुनायी। काबलासिंह को वरियामसिंह जानता था यानी उसने काबलासिंह को चार छ बार देखा था, लेकिन मुलाकात कभी नही हुई थी। सारा किस्सा सुनकर वरियामसिंह ने अपनी एक मूछ झुकाकर उसके बाल दांता म दाब लिय और गहरे सोच मे डूब गया।

आखिर उसने बूडसिंह की आखो मे-आँखें डालकर उत्तर दिया, "भई, अभी तक मैंने इस किस्म की घोडी के बार मे तो कोई खबर नही सुनी।

यह सुनकर बूडसिंह पलभर को चुप रहा। फिर उसने अपनी दाढी पर हाथ फेरते हुए कहा, "लेकिन वरियामया! इस सिलसिले मे कुछ तो करना ही होगा।'

एकाएक बरियाम न मूछ के बाल दातो से छोड दिये और बोला, "यहा से कोस एक के फासले पर असगर तेली रहता है। है तो अभी लौण्डा-सा, यही कोई उन्नीस-बीस बष का, लेकिन, भाई, बडे-बडा के कान कतरता है। उसे इस किस्म के कामो की खूब अच्छी तरह खबर रहती है। कहो तो मैं तुम्हे उसी के पास ले चलू, शायद कोई काम की बात पता चल जाये।"

बूडसिंह ने दोनो राना पर हाथ रखकर उठते हुए कहा, 'तुम कुरता पहन लो, सिर पर पगडी लपेट लो और चलो हमारे साथ असगर तेली से भी मिल लेते हैं।'

थोडी ही देर बाद वे तीनो अपने रास्ते पर चल दिये।

वरियामसिंह के पास कोई घोडा नही था, इसलिए वह बूडसिंह के पीछे ही बैठ गया।

जब वे तेली के घर पहुचे तो देखा कि असगर दरवाजे पर ही बैठा

दाढी सुजा रहा है और पास ही खड़े अपने बाप से बातें भी कर रहा है।

इन तीन आदमियों म से वरियाम को असगर ने फौरन पहचान लिया और उठकर हाथ आगे बढाये। फिर सबको घर के अन्दर चलने के लिए कहा। लेकिन वरियामसिंह ने वही रुकते हुए कहा, 'नही, उस्ताद आज हम बैठने नही आये हैं, जरा गाँव के बाहर चलो, तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

असगर तेली, उनके साथ-साथ हो लिया। गाव के बाहर पहुँचकर जब वरियामसिंह ने घोडी की चोरी की बात बतायी तो असगर न कानो पर हाथ धरकर कहा, "ना, भाई, मुझे इस घोडी की कोई खबर नही है।

बागडसिंह और बूडसिंह की शक्लें देखकर असगर कुछ घबरा सा गया था। वरियाम ने कुछ और पूछताछ के बाद अपना हाथ उसके कन्धे पर रखते हुए कहा, "अच्छा तो, असगर, तुम इस बात का खयाल रखना। घोडी बिलकुल काले रग की है और ऐसी घोडी इलाके भर मे किसी और के पास नही हो सकती। अगर तुम्हें कही दिखायी दे तो फौरन मुझे खबर करना।'

असगर ने सिर हिलाकर कहा, 'हा, हा, पक्का वायदा रहा। अगर कही से जरा-सी भी खबर मिली तो मैं तुम्ह जरूर इत्तिला दूगा।"

इतनी बातचीत के बाद वे दोना वापस लौटे। रास्ते म वरियामसिंह न कहा, 'देखा, कसा जानदार जवान है! शक्ल ही से पक्का हरामी नजर आता है!"

बूडसिंह ने हामी भरते हुए कहा, "हा, सो तो ठीक है। लेकिन वह घोडी का नाम सुनकर घबरा क्यो गया था, जसे चोरी उसी ने की है?"

यह सुनकर बागडसिंह के कान खडे हो गये। उसने चमकदार आखें उठाकर वरियाम की ओर देखा, 'अगर घोडी इसी ने चुरायी है तो वह तो मैं इसकी हड्डियो म से भी निकाल लूगा!"

वरियामसिंह ने गम्भीरता से कहा, "भाई, इसके बारे म कुछ नही कहा जा सकता। लेकिन मुझे उम्मीद नही कि उसने ऐसी हिम्मत की है। खैर कुछ दिना मे तो पता चल ही जायेगा।"

वरियाम को उन्होने उसके घर पर उतारा और खुद चब्बे को चल

दिये। रास्ते म बूटसिंह ने कहा, "देखा, आदमी तो दोना ही पहुंच हुए हैं। देखें, क्या नतीजा निकलता है।"

"मुझे तो दोनो ही चोर नजर आते हैं।"

"भाई, ऐसे लोगो के बारे मे विश्वास से तो कुछ कहा ही नही जा सकता। हाँ, अगर तुम्हे इन पर शक है तो हम और तरीको स इन पर नजर रखेंगे। आज तो देर हो गयी है, कल ही फिर कुछ आदमियो से मिलने चलेंगे।"

घोडी के चोरी चले जान से अखण्ड पाठ का मजा भी किरकिरा हो गया। जैसे-तैसे पाठ समाप्त हुआ। बागडसिंह ने काफी दौड धूप की। कुछ लोगो पर उसे शक भी था, लेकिन अभी तक घोडी का कोई पक्का सुराग नही मिला था।

एक रात खाना खाने के बाद कावलासिंह ने बागडसिंह को अपने नये मकान की बठक मे बुलाया। बागडसिंह को यही उम्मीद थी कि आज फिर उसे डाँट पडेगी। लेकिन जब वह बैठक म दाखिल हुआ तो देखा कि कावलासिंह बडे पलग पर अपने दोनो हाथ पीछे की ओर टेके चुपचाप बैठा था। उसका चेहरा बहुत गम्भीर हो रहा था।

थोडी देर बाद उसने चेहरा ऊपर उठाकर बागडसिंह की ओर देखा और भारी लेकिन मद्धिम स्वर म कहना शुरू किया, 'देख, *बागड्या*! रावी के इस पार तो हम घोडी की तलाश कर ही रहे हैं। रावी के उस पार के इलाक म भी घोडी की तलाश होनी चाहिए। इसका तरीका यह है कि अबकी जब तुम बैसाखी पर ननकाने साहब जाओ तो एक काम करो। वहाँ एक-से एक बढकर धाकड जवान आते हैं। उनम स जो तुम्हे सबसे बडा धाकड नजर आये, तुम उस फाँस लेना। उससे सौदा यह करना कि अगर हमारी घोडी को वह ढूढ निकाले ता उस दो सौ रुपया इनाम मिलेगा और अगर वह चोर को भी पकडवा द या उसका पता ही बता दे तो उस दो सौ रुपया इनाम और मिलेगा। घोडी का हुलिया उसे अच्छी तरह समझा देना।'

बागडसिंह को काबलासिंह की यह बात पसन्द नहीं आयी। यह सोचना कि रावी पार के किसी इलाके से कोई आदमी यहा घोडी की चोरी करने आया होगा, केवल मूखता की बात थी। लेकिन काबलासिंह के सामने उसमे चू करने की हिम्मत न थी। और फिर अभी बैसाखी म काफी दिन थे, इसलिए उसने काबलासिंह को विश्वास दिलाया कि वह वैसा ही करेगा जसा कि उसे बताया गया था।

इलाके भर म काबलासिंह की घोडी चोरी चले जाने की बात जगल की आग की तरह फैल गयी थी। बागडसिंह को मालूम था कि उनके इलाके मे बहुत-से लोग काबलासिंह को माननेवाले भी थे, उसमे डरनेवाले भी बहुत थे, और ऐसे लोगो की भी कमी नही थी जो घोडी की खबर पाकर फौरन ही काबलासिंह को खबर देने चले आयेंगे ताकि इस तरह वह काबलासिंह की प्रशसा प्राप्त कर सकें।

इस बात का भी बागडसिंह को पूण विश्वास था कि घोडी इलाक के ही किसी बदमाश ने चुरायी होगी और बैसाखी से पहले पहले जरूर ही उसका पता मिल जायेगा। वह कुछ और लोगो से मिल चुका था। कुछ को तो वह स्वय जानता भी था और कुछ लोगो से बूडसिंह ने उसकी मुलाकात करायी। जितन लोगा से वह मिल चुका था, उनमे स अब तक उसे सबसे ज्यादा शक असगर तेली पर ही था। शायद वह उसकी गरदन नाप लेता, लेकिन बूडसिंह ने उसे इस काम से बाज रखा। बूडसिंह का कहना यह था कि असगर तेली पर नजर रखी जाये। अगर उसने घोडी चुरायी है तो जरूर एक रोज़ इसका सुराग मिल जायेगा। चुनाचे बागडसिंह न असगर के पीछे कुछ आदमी लगा दिये। असली बात तो यह है कि कम उम्र होते हुए भी असगर बडा चतुर था। अगर उसने घोडी चुरायी भी होती तो वह यू ही बागडसिंह के काबू म आनेवाला नही था। वरियामसिंह ने बूडसिंह को विश्वास दिलाया कि असगर तेली घोडी चुराने की हिम्मत कभी नही कर सकता। और जब बागडसिंह ने बूडसिंह की जबानी यह बात सुनी तो बोला "मुझे तो वरयामे पर भी शक है। यह भी असगर तेली के साथ मिला हुआ है। इसीलिए उसे बचाने की कोशिश कर रहा है।"

बूडसिंह ने धीमे स्वर मे समझाते हुए कहा, "देखो, बागडसिंह, तुम

मेरा कहना तो यह है कि जोश मे आकर कोई ऐसी हरकत मत करो जिसके कारण हम लेने के देन पड जायें।"

"अच्छा, अच्छा। मैं तुम्हारी बात मानता हूँ, और तुम्हे विश्वास दिल . हूँ कि जब तक तुम्हारी तसल्ली न हो जाय, तब तक मैं उन लोगो । कुछ नही कहूँगा। लेकिन एक रोज तो उनकी गरदन नापनी ही पडगी। ' मतलब है कि अगर सीधी उँगलिया मे घी न निकला तो फिर टेढी तो करनी ही पडेगी।"

तक पहुँचकर बात खत्म हो गयी।

न गुजरते गये। लेकिन घोडी का कुछ भी पता न चला। अब मे दो-तीन ही दिन बाकी रह गये थे।

य दो-तीन दिन तैयारियो मे ही गुजर गये।

को झुझलाहट तो जरूर हो रही थी लेकिन वह कर ही क्या ? मेले से लौटकर ही वह उन लोगो की खबर लेगा। वह भी कह देगा कि अब वह और ज्यादा सब्र नही कर सकता।

त को बैसाखी के मेले का सबसे बडा चाव था, क्योकि अबकी उनका विशेष कार्यक्रम था। वह अल्हड और नातजुरबकार दुनिया के ऊँच-नीच को ज्यादा समझती भी नही थी। उसे तो, महसूस हो रहा था कि वह एक बहुत ही अनोखा और दिल- जा रही थी।

जरूरत से ज्यादा ही गर्म मिजाज और हृष्ट-पुष्ट हो। याद रखो ! जो काम सुई से निकल सकता है वह भाले से नहीं निकलता।'

बागड़सिंह ने बड़े उजड्डपन से कहा, 'निकलता क्यों नहीं? ज्यादा से ज्यादा मैं वैसाखी के मेले तक इनका इंतजार करूँगा। लेकिन मेले से वापस लौटकर तो मैं इनकी टाँगों में कुण्डा अड़ाकर बीच चौराहे के उलटा लटका दूँगा।'

"और उन्होंने अगर घोड़ी चुरायी ही नहीं होगी तो वे उसे कहाँ से पैदा करेंगे?"

"यह मैं नहीं जानता। उन्हें कहीं-न-कहीं से घोड़ी पैदा करनी ही पड़ेगी! नहीं तो तुम जानते ही हो कि मैं खाल खिंचवाकर अन्दर भूसा भर देनेवाला आदमी हूँ!"

बूड़सिंह ने उसे ताव में आते देखा तो उसकी पीठ थपथपाते हुए बोला, "धीरज से काम लो! अभी देखो तो सही, वाहगुरु अकाल पुरख क्या करता है।'

बागड़सिंह ने नथुने फुलाकर उत्तर दिया, "सो तो मैं देख ही रहा हूँ। मगर इतना समझ लो कि वाहगुरु अकाल पुरख ने कुछ न किया तो फिर बागड़सिंह तो कुछ-न-कुछ करके ही रहेगा!'

वह सुनकर बूड़सिंह ने कुछ और कहना उचित नहीं समझा। वह बागड़सिंह से किसी तरह कम नहीं था, लेकिन जिन्दगी के तजुरबे ने उसे कई ऐसी बातें भी सिखायी थीं, जो इस समय बागड़सिंह की समझ में नहीं आ रही थीं।

बूड़सिंह को चुप देखकर बागड़सिंह का दिल कुछ पिघला क्योंकि उसे बूड़सिंह से गहरा लगाव था। कई बार बूड़सिंह ने आड़े वक्त पर उसकी मदद भी की थी। शायद बूड़सिंह से उसका दोस्ताना न होता तो अब तक वह किसी न किसी बड़ी मुसीबत में फँस गया होता। इन्हीं बातों को सोचकर उसने अपनी कुछ सफाई देनी जरूरी समझी 'भाई, तुम काबलसिंह को तो जानते ही हो। और फिर इस बात को भी समझते हो कि घोड़ी का यह मामला बहुत ही गम्भीर है। इसीलिए तो मैं इतना परेशान हूँ।

'हाँ, हाँ, मैं इन सब चीजों को खूब अच्छी तरह समझता हूँ। लेकिन

मेरा कहना तो यह है कि जोश मे आकर कोई ऐसी हरकत मत करो जिसके कारण हमे लेने के देने पड जायें।"

"अच्छा, अच्छा। मैं तुम्हारी बात मानता हूँ, और तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ कि जब तक तुम्हारी तसल्ली न हो जाये, तब तक मैं उन लोगो से कुछ नही कहूँगा। लेकिन एक रोज तो उनकी गरदन नापनी ही पडेगी। मेरा मतलब है कि अगर सीधी उँगलियो से घी न निकला तो फिर उँगलियाँ टेढी तो करनी ही पड़ेंगी।"

यहा तक पहुँचकर बात खत्म हो गयी।

दिन गुजरते गये। लेकिन घोडी का कुछ भी पता न चला। अब बैसाखी मे दो-तीन ही दिन बाकी रह गये थे।

और ये दो-तीन दिन तैयारिया मे ही गुजर गये।

बागडसिंह को झुंझलाहट तो ज़रूर हो रही थी लेकिन वह कर ही क्या सकता था? मेले से लौटकर ही वह उन लोगो की खबर लेगा। वह बूडसिंह से भी कह देगा कि अब वह और ज्यादा सब्र नही कर सकता।

सुरजीत को बैसाखी के मेले का सबसे बडा चाव था, क्योंकि अबकी मेले पर तो उनका विशेष कायक्रम था। वह अल्हड और नातजुरबेकार लडकी थी। दुनिया के ऊँच-नीच को ज्यादा समझती भी नही थी। उसे तो, बस, इतना ही महसूस हो रहा था कि वह एक बहुत ही अनोखा और दिलचस्प खेल खेलने जा रही थी।

बहुत सी सखिया भी सुरजीत का साथ दे रही थी। उन सखिया ने भी अपने घरवालो को अमृतसर की बैसाखी देखने की बजाय ननकाना साहब की बैसाखी देखने पर मजबूर किया। रही फातिमा, वह मुसलमान थी, उसके घरवाले तो ननकाना साहब नही जा रहे थे, लेकिन उन्हें अपनी बेटी को सुरजीत के साथ भेजने म कोई आपत्ति नही थी। फातिमा के पिता का काबलासिंह से गहरा दोस्ताना भी था। और वे एक-दूसरे को मानते भी थे।

कई वष से काबलासिंह ने खुद तो इस किस्म के मेलो-ठेलो मे जाना बन्द कर रखा था, अब ये सारे काम बागडसिंह को ही करने पडते थे। वही सारा प्रबन्ध भी करता, वही सबको मेले मे ले जाता। उनका हर तरह से

जरूरत से ज्यादा ही गर्म मिजाज और हथछुट हो। याद रखो ! जो काम सुई से निकल सकता है वह भाले से नहीं निकलता।'

बागड़सिंह ने बड़े उजड्डपन से कहा, ' निकलता क्यों नहीं ? ज्यादा से-ज्यादा मैं बैसाखी के मेले तक इनका इंतजार करूँगा। लेकिन मेले से वापस लौटकर तो मैं इनकी टांगें में मुण्डा अड़ाकर बीच चौराहे पे उलटा लटका दूँगा।

"और उन्होंने अगर घोड़ी चुरायी ही नहीं होगी तो व उसे कहाँ से पैदा करेंगे ?"

"यह मैं नहीं जानता। उन्हें कहीं-न-कहीं से घोड़ी पैदा करनी ही पड़ेगी ! नहीं तो तुम जानते ही हो कि मैं खाल खिचवाकर अन्दर भूसा भर देनेवाला आदमी हूँ !"

बूड़सिंह ने उस ताव में आते देखा तो उसकी पीठ थपथपाते हुए बोला, "धीरज से काम लो ! अभी देखो तो सही, वाहगुरु अकाल पुरख क्या करता है।

बागड़सिंह ने नथुने फुलाकर उत्तर दिया, ' सो तो मैं देख ही रहा हूँ। मगर इतना समझ लो कि वाहगुरु अकाल पुरख ने कुछ न किया तो फिर बागड़सिंह तो कुछ-न कुछ करके ही रहेगा !'

यह सुनकर बूड़सिंह ने कुछ और कहना उचित नहीं समझा। वह बागड़सिंह से किसी तरह कम नहीं था, लेकिन जिन्दगी के तजुरबे ने उसे कई ऐसी बातें भी सिखायी थीं, जो इस समय बागड़सिंह की समझ में नहीं आ रही थीं।

बूड़सिंह को चुप देखकर बागड़सिंह का दिल कुछ पिघला क्योंकि उसे बूड़सिंह से गहरा लगाव था। कई बार बूड़सिंह ने आड़े वक्त पर उसकी मदद भी की थी। शायद बूड़सिंह से उसका दोस्ताना न होता तो अब तक वह किसी न किसी बड़ी मुसीबत में फँस गया होता। इन्हीं बातों को सोचकर उसने अपनी कुछ सफाई देनी जरूरी समझी, "भाई, तुम काबलसिंह को तो जानते ही हो। और फिर इस बात को भी समझते हो कि घोड़ी का यह मामला बहुत ही गम्भीर है। इसीलिए तो मैं इतना परेशान हूँ।'

हाँ, हाँ, मैं इन सब चीजों को खूब अच्छी तरह समझता हूँ। लेकिन

मेरा कहना तो यह है कि जोश मे आकर कोई ऐसी हरकत मत करो जिसके कारण हम लेने के देने पड जायें।"

"अच्छा, अच्छा। मैं तुम्हारी बात मानता हूँ, और तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ कि जब तक तुम्हारी तसल्ली न हो जाये, तब तक मैं उन लोगो से कुछ नही कहूँगा। लेकिन एक रोज़ तो उनकी गरदन नापनी ही पडेगी। मेरा मतलब है कि अगर सीधी उँगलियो से घी न निकला तो फिर उँगलिया टेढी तो करनी ही पडेंगी।"

यहा तक पहुँचकर बात ख़त्म हो गयी।

दिन गुज़रते गये। लेकिन घोडी का कुछ भी पता न चला। अब बैसाखी मे दो-तीन ही दिन बाकी रह गये थे।

और ये दो-तीन दिन तैयारियो मे ही गुजर गये।

बागडसिंह को झुझलाहट तो ज़रूर हो रही थी, लेकिन वह कर ही क्या सकता था? मेले स लौटकर ही वह उन लोगो की खबर लेगा। वह बूडसिंह से भी कह देगा कि अब वह और ज्यादा सब्र नही कर सकता।

सुरजीत को बैसाखी के मले का सबसे बडा चाव था, क्योकि अबकी मेले पर तो उनका विशेष कायक्रम था। वह अल्हड और नातजुरबेकार लडकी थी। दुनिया के ऊँच नीच को ज्यादा समझती भी नही थी। उस तो, बस, इतना ही महसूस हो रहा था कि वह एक बहुत ही अनोखा और दिलचस्प खेल खेलने जा रही थी।

बहुत सी सखिया भी सुरजीत का साथ दे रही थी। उन सखियो ने भी अपन घरवालो को अमतसर की बैसाखी देखने की बजाय ननकाना साहब की बैसाखी देखने पर मजबूर किया। रही फातिमा, वह मुसलमान थी उसके घरवाले तो ननकाना साहब नही जा रहे थे, लेकिन उन्ह अपनी बेटी को सुरजीत के साथ भेजने मे कोई आपत्ति नही थी। फातिमा के पिता का काबलासिंह से गहरा दोस्ताना भी था। और वे एक दूसरे को मानते भी थे।

कई वष से काबलासिंह ने खुद तो इस किस्म के मेलो-ठेलो म जाना ब द कर रखा था, अब य सारे काम बागडसिंह को ही करने पडते थे। वही सारा प्रब ध भी करता, वही सबको मेले मे ले जाता। उनका हर तरह से

लठ को हवा मे हिलाया और ज़ोर से हाक लगायी, "होशियार ! ओ बेलासिहा ! ओ करतारसिहा ! ओ कपूरसिहा ! चलो !"

पाँच

'चलो !' शब्द बागड़सिह के मुह से निकला ही था कि गाडीवानो ने बैलो की नकेलो को झटका दिया और ऊचे लम्बे बैल सीग हिलाते और अपने गले से लटकी हुई घण्टियो को बजाते दौड पडे।

चूकि चब्वे के आगे ढलान थी, इसलिए बैल बडे ज़ोर शोर से दौडे। उन्ह इस तरह दौडते देखकर घुडसवारा को भी ताव आया। उन्हान लगामो को झटका दिया तो कुछ घोडे पिछली टागो पर खडे होकर अगली टाँगें हवा म यू फटकारन लगे, जैसे वे आकाश मे उडने को हो। कुछ घोडा ने हिनहिनाकर उलट कदमो चलना शुरू कर दिया। लेकिन जल्दी ही शायद घोडो को भी बैलो को तेज़ दौडते देखकर शर्म महसूस हुई और एकाएक ही कनौतिया हिलाते हुए वे तडपकर यू आगे बढे जैसे धनुष से तीर छूटते हैं।

बैलगाडियों के इस तरह अन्धाधुन्ध चलने से खूब हिचकोले लगे। सुरजीत और उसकी सहेलियो को बडा मजा आया और जब वे खिल-खिलाकर हँसी तो उनकी हँसी की आवाजें घण्टियो की आवाज़ा म घुल-मिल गयी।

तारो की छाव तले यह काफिला एक खास रफ्तार से अपन लम्बे सफर पर बढता चला जा रहा था। खामोशी के उस आलम मे घण्टियो और घोडो की टापो की आवाज़ें दूर-दूर तक सुनायी दे रही थी। जब वे किसी बस्ती क पास से गुज़रते तो गाव के सारे कुत्ते इकटठे होकर भूकन लगत। जब तक काफिला आखो से ओझल न हो जाता वे भूकत ही चले जात। बाज़ कुत्ते बडी ढिठाई से घोडो की टागो को काटने की कोशिश करते। इस पर घुडसवार घुमाकर लाठी जमा देता। भरपूर चोट खाकर कुत्ता भूकना बन्द करके 'क्याओ-क्याओ' करना शुरू कर देता, यानी पचम स्वर से उतर-कर मध्यम पर आ जाता। उसके साथ वह दुम दबाकर भागता तो बाकी

खयाल रखता, और फिर सबको समेट समाटकर वापस भी ले आता। इसी-लिए तो काबलसिंह के घर में भी उसका इतना मान था।

धीरे धीरे कई दिनों से मेले की तैयारियाँ हो रही थीं, लेकिन जब दो ही दिन रह गये तो एक हड्बाग-सी मच गयी। घराने की औरतों और आदमियों को मेले में सात आठ दिन तक टिकना था, इसलिए उनके खाने और कपड़े-लत्ते का पूरा प्रबन्ध किया जा रहा था।

रेलगाडी में जाना बेकार था, क्योंकि इसका मतलब था कि पहले लाहौर के स्टेशन पर पहुँचें और फिर वहाँ तक शेखूपुरे के स्टेशन से सफर करें। इसकी बजाय बैलगाडियों और घोड़ों से सफर करना अच्छा था। आखिर सामान भी तो बहुत था! उसे गाड़ी में लादना और साथ सवारियों को चढाना उतारना कोई मामूली मुसीबत तो नहीं थी। सड़क के रास्ते से जाने में यह भी सुविधा थी कि सारा सामान तीन चार बैलगाड़ियों में लादा जा सकता था और जनानी सवारियाँ या बच्चे कच्चे, छतवाली बैलगाड़ियों में बैठ सकते थे। रहे मर्द, उनके लिए घोड़े काफी थे।

आखिर एक रोज सुबह चार बजे ही तारों की छाव में काबलसिंह के घर के बाहर सामान से लदे छकड़े तैयार खड़े थे। रात ही से उनमें सामान लादा जा रहा था। कपड़ों की गठरियाँ, गेहूँ, बाजरे और मक्के का आटा, दालें, घी का कनस्तर और बाकी जरूरी सामान—जैसे तम्बू, मवेशियों के लिए भूसा, घोड़ों के लिए काले चने का दलिया। इनके अलावा भी अनेक छोटी मोटी चीज़ें लद चुकी थीं।

सामान ले जानेवाली बैलगाड़ियाँ लद चुकी तो एक बैलगाड़ी में बड़ी बूढ़ी औरतें और नन्हे बच्चे और दूसरी बैलगाड़ी में सुरजीत और उसकी जवान जवान सहेलियाँ रस भरे खुशबूदार खरबूजों की तरह लद गयी।

घोड़ों पर सवार कुछ मर्द बैलगाड़ियों के चलने का इन्तजार कर रहे थे। बागड़सिंह अपने चंचल और खूबसूरत घोड़े पर सवार सारे काफिले के आगे पीछे घूम रहा था। गाड़ीवान उसी के इशारे की प्रतीक्षा में थे कि वह कहे तो वे चलें।

आखिर जब बागड़सिंह ने इस बात की तसल्ली कर ली कि सारा सामान ठीक ढंग से लद गया है तो उसने हाथ ऊपर उठाकर अपने लम्बे

लठ को हवा में हिलाया और जोर से हाक लगायी, "होशियार ! ओ बेलासिहा ! ओ करतारसिहा ! ओ कपूरसिहा ! चलो !"

पाँच

'चलो !' शब्द बागर्डासिह के मुह से निकला ही था कि गाडीवानो ने बलो की नकेलो को झटका दिया और ऊचे-लम्बे बैल सीग हिलाते और अपने गले से लटकी हुई घण्टियो को बजाते दौड पडे।

चूकि चब्बे के आगे ढलान थी, इसलिए बल बडे जोर शोर से दौडे। उन्हे इस तरह दौडते देखकर घुडसवारो को भी ताव आया। उन्होने लगामो को झटका दिया तो कुछ घोडे पिछली टागो पर खडे होकर अगली टागें हवा म यू फटकारने लगे, जैसे वे आकाश मे उडने को हो। कुछ घोडा ने हिनहिनाकर उलटे कदमो चलना शुरू कर दिया। लेकिन जल्दी ही शायद घोडा को भी बैलो को तेज दौडते देखकर शम महसूस हुई और एकाएक ही कनौतिया हिलाते हुए वे तडपकर यू आगे बढे जैसे धनुष से तीर छूटते हैं।

बैलगाडियो के इस तरह अधाधुध चलने से खूब हिचकोले लगे। सुरजीत और उसकी सहेलियो को बडा मजा आया और जब व खिल-खिलाकर हँसी तो उनकी हँसी की आवाजें घण्टिया की आवाजो मे घुल-मिल गयी।

तारो की छाव तले यह काफिला एक खास रफ्तार से अपने लम्ब सफर पर बढता चला जा रहा था। खामोशी के उस आलम मे घण्टिया और घोडा की टापों की आवाजें दूर दूर तक सुनायी दे रही थी। जब वे किसी बस्ती के पास से गुजरते तो गाव क सारे कुत्ते इकटठे होकर भूकन लगत। जब तक काफिला आखो से ओझल न हो जाता वे भूकत ही चले जात। बाज कुत्ते बडी ढिठाई स घोडो की टागा को काटने की कोशिश करते। इस पर घुडसवार घुमाकर लाठी जमा देता। भरपूर चोट खाकर कुत्ता भूकना बन्द करके 'क्याओ-क्याओ करना शुरू कर देता, यानी पचम स्वर से उतर-कर मध्यम पर आ जाता। उसके साथ वह दुम दबाकर भागता तो बाकी

नारों के उत्तर म मेढकों की आवाजें सुनकर कोई मनचला घुड़सवार हँसकर कहता "लो भाई ! मेढकों ने भी जवाबी कार्यवाही शुरू कर दी !"

यह सुनकर दूसरे घुड़सवार और बैलगाडी म घुसी लडकियाँ हसने लगतीं। और फिर कुछ युवक तारों के मद्धिम प्रकाश म अपनी लाठियों से बँधी हुई छवियों को हवा मे लहरा लहराकर 'बल्ले-बल्ले' पुकार उठते।

रावी का फैला हुआ पाट नीला आगे और नीला पीछे नज़र आ रहा था। यू लगता जैसे किसी न लाखों मन चाँदी कूटकर एक वर्क बनाया हो और उसे कोसों तक फली धरती पर बिछा दिया हो। रावी पारवाले किनारे पर काटेदार ऊँचे-लम्बे झाड थे, जो छोटी छोटी झडबेरियों को अपने नीचे दबाये हुए थे। बेरियों के पेड सहमे-सहमे खडे थे और शरीह के ऊच ऊँचे पेड जैसे सीना तानकर आस पास के छोटे-मोटे पेडों को लडन के लिए ललकार रहे हों। आस-पास कहीं-कहीं रहट भी दिखायी द जाते। कुछ रहट खामोश थे और कुछ चल रहे थे। चलनेवाले रहटों के बडे बडे चरखडे भारी भरकम अजगरों की तरह बल खाते दिखायी देते और उनकी रूँ रूँ की आवाज़ों से कुएँ के नीचे से आनवाली टिण्डों से गिरते हुए पानी की आवाजें घुल मिलकर अजीब समा बाध रही थी।

धीरे धीरे करोडो मील दूर खडे सूय देवता ने अपने उज्ज्वल मुखडे से रात के काले परदे नोचकर अलग फेंक दिये तो पूरब से प्रकाश की धूल हवा मे उडते हुए गुलाल की तरह सारी धरती पर फैलने लगी। कुछ मनचली चिडियाँ घोसलों को छोडकर सूय का स्वागत करने के लिए आकाश की ऊँचाइयों मे उड निकलीं ! कुछ ने बार-बार चकफेरियाँ लेनी शुरू की। हवा के कन्धों पर उन्होंने अपने नन्हे नन्हे, कटे फटे, लेकिन मनोहर गीतों के मोती बिखेरने शुरू किये। अब कहीं कहीं मोटे तगडे साड रात-भर की धूल झाडकर उठ खडे हुए और लगे जोर ज़ोर स डकराने। इस तरह सारी प्रकृति को अँगडाई लेते देख एक घुड़सवार ने मौज मे आकर अपनी घोडी को एड दी और घोडी नाच और चमककर यू आगे बढी जैसे फुलझडी मे से चिनगारी छूटती है और फिर घुडसवार ने अपने मोटे लोहे के कडेवाला हाथ यू आकाश की ओर फेंका जसे वह खुले तारों को नोचकर धरती पर घसीट लायेगा और फिर उसकी यहीपाटदार आवाज आकाश की ऊचाइयों

कुत्ते भी इस जोर से भागते जैसे भागने मे भी उसको मात देना चाहते हो। घुडसवार और बैलगाडी म बैठी लडकिया यह तमाशा देखकर हसने लगती। यहा भी मर्दो की आवाजो के साथ लडकियो की आवाजें घुल मिल जाती तो मध्यम और पचम का मजा आ जाता।

कही-कही ऊची घनी झाडियो के झुण्ड मे गीदडो या भेडियो की टुकडिया इस काफिले की अनोखी अनोखी आवाजें सुनकर चौंक जाती। कुछ दूर भागकर भेडिये घूम-घूमकर देखने लगते कि कही अनोखे जानवरो का यह झुण्ड उनका पीछा तो नही कर रहा ? जब वे मचलते हुए घोडो की टापो से मोटे-मोटे ठीकरो से टकराने के कारण चिनगारिया उडती देखत तो अपनी गुफफेदार दुमो को धरती पर पखों की तरह झलते हुए जबडो से लाल लाल जीभें लटकाये दूर भाग जाते।

रह-रहकर घुडसवार यू ही जोश मे आकर 'सत सिरी अकाल' के नारे लगाने लगते। अचानक ही एक घुडसवार युवक, जिसने अक्सर एक ही वक्त पर दो दो सेर घी म तर-ब-तर हलवा खा खाकर अपना गला रवाँ कर रखा होता था, हलक का पूरा जोर लगाकर चिल्ला उठता, "जो बोले सो निहाल।"

बाकी सब घुडसवार उसी ऊँचे स्वर मे बोल उठते, "सत सिरी अकाल।"

यह नारा तीन बार लगाया जाता और इसकी गूज दूर दूर तक पहुँच जाती। आवाजो की इस गूज मे वही भरपूर शक्ति और तवानाई थी जो बोलनेवालो की रगो म दौडनेवाले लहू मे थी। जिस तरह वे अपने हरे भरे खेतो, अपनी भरपूर जवानीवाली चचल युवतियो, बिजली की तरह तडपनेवाले अपन घोडो और अपने पले-पलाये सुदर बैलो को देखकर खुश होत थे, उसी तरह वे अपनी भरपूर आवाजो की गूज सुनकर भी मारे हष के फूले न समात थ। वे भरपूर आवाजें भी उनके जीवन मे कुछ कम महत्व नही रखती थीं।

अब काफिला रावी नदी के किनारे किनारे बढा जा रहा था। नदी के किनारे कुछ दूर तक फैल हुए कीचड म ऊँघते हुए मेढक काफिले की आवाजें सुनकर चौंक उठत और मिल जुलकर जोर जोर से टर्राने लगते। अपन

नारो के उत्तर म मेढको की आवाजें सुनकर कोई मनचला घुडसवार हँसकर कहता, "लो भाई ! मेढकों ने भी जवाबी कार्यवाही शुरू कर दी !"

यह सुनकर दूसरे घुडसवार और बैलगाडी म घुसी लडकियाँ हसने लगतीं। और फिर कुछ युवक तारा के मद्धिम प्रकाश में अपनी लाठियो से बँधी हुई छवियो को हवा मे लहरा लहराकर 'बल्ले बल्ले' पुकार उठते।

रावी का फैला हुआ पाट मीलो आगे और मीलो पीछे नजर आ रहा था। यू लगता जैसे किसी ने लाखो मन चादी कूटकर एक वक बनाया हो और उसे कोसो तक फैली धरती पर बिछा दिया हो। रावी पारवाले किनारे पर काटेदार ऊचे-लम्बे झाड थे, जो छोटी छोटी झडबेरियो को अपने नीचे दबाये हुए थे। बेरियो के पेड सहमे सहमे खडे थे और शरीह के ऊच ऊँचे पेड जैसे सीना तानकर आस-पास के छोटे मोटे पेडो को लडन के लिए लल कार रह हो। आस-पास कहीं-कहीं रहट भी दिखायी द जाते। कुछ रहट खामोश थे और कुछ चल रहे थे। चलनवाले रहटो के बडे बडे चरखडे भारी भरकम अजगरो की तरह बल खाते दिखायी देते और उनकी रूँ रूँ की आवाजो से कुएँ के नीचे से आनवाली टिण्डो से गिरते हुए पानी की आवाजें घल मिलकर अजीब समा बाध रही थी।

धीरे धीरे करोडो मील दूर खडे सूय देवता ने अपन उज्ज्वल मुखडे से रात के काले परदे नोचकर अलग फेंक दिये तो पूरब से प्रकाश की धूल हवा म उडते हुए गुलाल की तरह सारी धरती पर फैलने लगी। कुछ मन-चली चिडिया घोसलो को छोडकर सूय का स्वागत करने के लिए आकाश की ऊँचाइयो मे उड निकली ! कुछ ने बार-बार चकफेरिया लेनी शुरू की। हवा के कन्धो पर उन्होंने अपने नन्हे न हे, कटे कटे लेकिन मनोहर गीतो के मोती बिखेरने शुरू किये। अब कही कहीं मोटे-तगडे साड रात भर की धूल झाडकर उठ खडे हुए और लगे जोर-जोर से डकराने। इस तरह सारी प्रकृति को अँगडाई लेते देख, एक घुडसवार ने मौज मे आकर अपनी घोडी को एड दी और घोडी नाच और चमक्कर यू आगे बढी जैसे फुलझडी मे से चिनगारी छूटती है और फिर घुडसवार ने अपने मोटे लोह के कडेवाला हाथ यू आकाश की ओर फेंका, जैसे बचे खुचे तारो को नोचकर धरती पर घसीट लायेगा और फिर उसकी यहीपाटदार आवाज आकाश की ऊचाइया

मे घूमकर फैले हुए खेतो के सीने से जा मिली, "जो बोले सो निहाल !"

फिर वही जवाब—"सत सिरी अकाल !"

जब सूय की नयी-नवेली कुवारी किरणो के प्रकाश मे खेत, झाडियाँ, पेड, घास, मेढक, घुडसवार, रहट और दुनिया की हर चीज नहाने लगी तो एक घुडसवार ने लाठी से दूर इशारा करते हुए कहा, "वह देखो ! रावी का पुल !"

दूर से रावी का पुल यू दिखायी दे रहा था, जैसे कोई बहुत लम्बा-चौडा मगरमच्छ नदी मे से निकलकर धूप मे नहान के लिए नदी के आर-पार आन टिका हो।

कुछ समय के बाद सारा काफिला पुल पर से गुजरकर रावी-पार के इलाके मे दाखिल हुआ।

अब पक्की सडक का रास्ता था, इसलिए बैलगाडियो की रफ्तार भी तेज हो गयी। बैल खुशी खुशी भाग निकले। घुडसवारो ने अपन-अपने घोडो को दुलकी चाल मे डाल दिया।

खेतो मे से भाप धीरे-धीरे ऊपर को उठन लगी। दूर दूर तक फैले हुए घने पेडो के झुण्डो के बीच म से गारे के बने हुए मकानोवाले गाव यूँ दिखायी देने लगे, जैसे कीचड मे लथपथ मेढक।

सूय पूरब मे एक बार उभरा तो फिर तेजी से उभरता ही चला गया। यहाँ तक कि काफिलेवालो को भूख लग आयी। जरा फासले पर ही बरगद के बडे-बडे पेड थे। उनकी घनी छाव-तले एक साफ सुथरा रहट चल रहा था। बलगाडियो को सडक से उतारकर रोक दिया गया। रहट के ओलू मे एक किनारे से लगा हुआ पक्की मिट्टी का एक मटका मटठे से भरा धरा था। बागडसिह सीधा उस मटके के पास पहुँचा। घोडे से उतर उसने छन्ना उठाकर देखा कि मटके म लस्सी है भी या नही। मटका भरा हुआ था, लेकिन बागडसिह जानता था कि एक मटके से उसके पूरे काफिले का काम नही चलने का।

उसने नजर उठाकर देखा कि दो बलो के पीछे गाधी का एक बूढा सिक्ख बैठा है जो मुह स टख टख किये जा रहा है और एक हाथ से अपनी बहुत लम्बी दाढी को कघा भी करता जा रहा है। उसने पगडी उतार

रखी थी। वह गजा तो नही था, फिर भी उसके बाल इतने कम थे कि उसका जूडा एक जामुन से बडा नही दिखायी देता था।

बागर्डसिह ने ऊँचे स्वर म कहा, "बाबाजी! इस एक चाटी मट्ठे से हमारा क्या बनेगा?"

बूढा अपनी पतली पतली टाँगो की चौकडी मारे बैठा था। उसने जो यह कडी आवाज़ सुनी तो माथे पर बल डालकर औलू की तरफ देखा। जब बागर्डसिह की शक्ल नज़र आयी तो वह पिघल गया और चलती गाधी पर से उछलकर नीचे उतर पडा। वह बढा और औलू के निकट अपने कूल्हा पर हाथ रखकर खडा हो गया। उस समय घुटने तक पहुँचते हुए उसके कच्छे का इजारबन्द लटककर उसकी पिण्डलियो के करीब झूल रहा था। उसने पोपले मुह से हँसकर कहा, "बादशाओ! आपको जितनी लस्सी की जरूरत हो, दो मिनट म यहा पहुँच जायगी। गाव पास ही तो है।"

बागर्डसिह ने बुड्ढे के चूहे के बिल की तरह बेदात खुले मुह मे झाका और अपन बडे बडे दात दिखाते हुए बोला, "तो बस, बाबाजी, फौरन ही दो चाटिया और मँगाइय! धूप चढ आयी है। हमे प्यास लगी है। यह चाटी तो अभी खाली हो जायेगी। खाने के साथ भी तो लस्सी चाहिए!"

यह सुनकर बाबे न अपना सिर पीछे फेंककर एक हाथ मुह के पास रखा और खरखराती आवाज़ चिल्लाकर बोला, "ओये पप्पी! पप्पी ओय!"

वह दो तीन बार चिल्लाया तो नाक सुडसुडाता हुआ एक लडका दौडता हुआ आ पहुँचा—सिर से पाव तक नगा! चेहरा ऐसा था, जसे उस बिल्लिया चाट गयी हों। उसके सिर के चारो ओर बाल फैले हुए थे। जब वह दौडते दौडते एकदम पास आकर रुका तो उसकी फुल्ली भी इधर उधर मटककर रुक गयी। बाजू ऊपर उठाया और दूसरे हाथ से बगल खुजाते हुए बोला, "काह गल, ए बापू?"

बाबे न अपने सात-आठ साल के पोते की पीठ पर अपने हलके-फुलके हाथ से धमोका देते हुए कहा, 'जा पुत्रा, अपनी बबे से कह कि कुएँ पर कुछ परदेसी उतरे हैं उनके लिए दो चाटी लस्सी भिजवा दे। अगर घर मे इतनी लस्सी न हो तो इधर-उधर से इकट्ठी कर ले।'

सुनते ही वह छोकरा ऐसा बगटुट भागा, जैसे गुलेल से छूटा गुल्ला! बागड़सिंह और उसके साथी पप्पी के चूतड़ो पर लगी मिट्टी देखकर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे। इस पर लड़का झेंपकर और भी तेज़ी से भागा। बूढ़ा भी उन्ही के साथ पोपले कहकहे लगाने लगा और पीछे से पुकारकर कहने लगा, "ओय पुत्रा! अब कच्छा पहन के आइयो!"

इस समय तक सब लड़कियाँ बाहर निकल आयी थी। उनके सुरीले कहकहो और कुलेलो से वातावरण जगमगा उठा था। नौजवान लड़कियो की भरपूर जवानी यह चमक दमक और यह थिरकन फड़कन, थल थल करती हुई छातियोवाली अधेड उम्र की औरतो को एक आँख नही भाती थी। सुरजीत की ताई अपने कचौडियो स गालो को और भी फुलाकर बोली, "ए छोकरियो! यह क्या धकमपेल लगा रखी है? चलो, परांठे निकालो और चलकर ठिकाने से बैठो।"

छह

ऐसी जली-कटी बाता से ये लड़कियाँ घबरानेवाली नही थी। उनमे से किसी ने मुह फेरकर अपनी सुबक-सी नाक चढा दी, किसी ने छिपाकर अँगूठा हिला दिया और फातिमा ने सुरजीत की आड लेकर ताई की तरह अपने गाल फुलाये और उसके शब्दो की हू-ब हू नकल उतारकर रख दी जिससे लड़कियो की हँसी बन्द होने के बजाय और खिलखिला उठी। खी-खी करती हुई कुछ लड़किया की आखो मे पानी आ गया और कुछ तो गोता खाकर खासती-खाँसती दोहरी हो गयी।

बागड़सिंह ने पहले एक छन्ना लस्सी खुद पी फिर जबकि उसकी मूछो स सफेद सफेद मट्ठे की बूदें टपक ही रही थी उसने दूसरा छन्ना अपने एक साथी की ओर बढाते हुए कहा, 'ले ओए बोतासिंह!"

इन शब्दा के साथ बागड़सिंह के मुह से जो जोर की डकार निकली तो उसकी मूछो से लटकती हुई बूदा की फुहारें सीधी उड़कर बोतासिंह की आँखो म पडी। बोतासिंह ने आखें ज़ोर से बन्द कर ली और मट्ठे का छन्ना मुह स लगा लिया।

खाना पीना हो चुका तो काफिला फिर पक्की सडक पर मजे से आगे बढ चला।

लडकियो ने बैलगाडी के अन्दर बैठे-बैठे समाँ बाँध रखा था। मर्दों की तरह घोडो पर सवार होना, हवा म छवियाँ लहराना, जोर जोर के जयकारे लगाना, गला फाड-फाडकर गीतो के बोल बोलना उनके लिए मना था, लेकिन बैलगाडी के अन्दर बैठे बैठे चुहलें करना और गिटपिट बातें चलाना तो उन्ह मना था नही। जब मर्द जयकारे बुलाते, गला फाड फाड-कर गाते या कोई और हरकत करते तो लडकियाँ चुपचाप गाडी म से झाक झाककर यह सब देखने लगती। जब उधर खामोशी हो जाती तो ये अपनी काँच की चूडिया खनखनाकर बातें करने लगती।

इस समय सुरजीत से छेडछाड हो रही थी। इस छेडछाड की शुरुआत फातिमा ने की थी। फातिमा अपनी सखी के मन की दशा को खूब अच्छी तरह समझती थी। वह जानती थी कि छेड मे उसे मजा आने लगा था, चुनाँचे उसने सखी को छेडने के खयाल से नहीं बल्कि उसके मनोरजन के लिए इस किस्म का विषय छेड दिया था। उसने अपने गोरे गोरे मेहँदी रँगे हाथों को हवा म लहराया तो उसकी बाह पर लाल नीली पीली काच की चूडियाँ खनखना उठी। इसी खनखनाहट के स्वर के साथ उसने अपना सुरीला स्वर मिलाते हुए कहा, "देखो सखियो! मेले म जाकर अपनी सुरजी का खयाल रखना!"

अब हर सहेली ने जान बूझकर गोल मोल इशारे या समझ मे न आने-वाली टढी मेढी बातें कहनी शुरू की। बिल्लो कह उठी, 'अजी सुरजीत को क्या कौए उठा ले जायेंगे जो हम सबको उसका खयाल रखना होगा?"

यह सुनकर सब सखिया ने जोरदार कहकहे लगाये जिन्ह सुनकर आगे जानेवाली बैलगाडी मे बठी हुई अधेड और बूढी औरतें जरूर गम हो उठतीं, लेकिन वे यही समझती रही कि ये कहकहे नही लग रहे, लडकिया की चूडिया खनक रही हैं।

फातिमा ने अपनी नाजुक उँगलियो म बिल्लो के सिर पर हलकी सी चपत लगाते हुए कहा, "दुर! तुझे तो भीतर की बात समझने म बडी देर लगती है!

बिल्लो बोली, "भई, बात बात होती है! कानो से सुनी और समझ ली। भला भीतर की बात क्या होती है, यह तो हम नही जानते!"

फातिमा बोली, "जान जाओगी, मेरी बिल्लो। हो सकता है कि तुम बन रही हो। अगर बन नही भी रही, तो तुम्हारे वाहगुरु ने चाहा तो जल्दी ही भीतर की बातें समझने लगोगी!'

अमरो बोली, 'अरी फत्तो! जब बेचारी बिल्लो का बाहर की बातो से ही गुज़ारा हो रहा है तो उसे भीतर की बातें जानने की ज़रूरत ही क्या है?"

फातिमा बोली "ए अमरो! यह अच्छी तरह समझ ले कि भीतर की बातें जाने बिना दुनिया मे किसी औरत या मर्द का गुज़ारा नही हो सकता। ये सब कहने की बातें हैं!'

अमरो ने दोना हाथ जोडकर कहा, "अच्छा, बाबा! हम मान गये तेरी बात! इतना तो बता कि आखिर भीतर की बात है क्या?"

फातिमा बोली, 'किसके भीतर की?'

एक बार फिर सब लडकिया खिलखिलाकर हँस पडी। मसो ने कहा, "वाह री फातिमा! तेरा भी जवाब नही!'

फातिमा बोली, "अजी, न मेरा जवाब है, न सवाल! मैं तो अपनी सखी सुरजीत की बातें कर रही थी!"

प्यारो बोली, हाँ, अब समझ म आयी। अब तो बता ही डालो कि सुरजीत के भीतर की बात क्या है।'

फातिमा बोली, "वाह! इतनी जल्दी भूल गयी? याद नही रहा, अबकी मेले म '

अमरो बोली, 'कहते कहते रुक क्यो गयी? क्या होगा मेले म?"

फातिमा बोली 'तुम तो शरारत कर रही हो! जान बूझकर छेड़खानी क्यो करती हो? देखती नही कि बेचारी सुरजीत कैसी शरमा रही है!"

अमरो ने कहा, "तो वह हमारी बातो स थोडे ही शरमा रही है! तुमने जो यह 'भीतर भीतर' की रट लगा रखी है, इसी वजह स बेचारी को शरमाना पड रहा है!'

फातिमा बोली, "ठीक है। लेकिन इसके शरमाने से हमारी दफ्तरी कारवाई थोड़े ही रुक जायगी।"

प्यारो बोली 'वाह ! वाह ! तो यह दफ्तरी कारवाई हो रही है ?"

फातिमा बोली, "बिलकुल।"

मसो बोली 'मैं कहती हूं कि दूसरो के भीतर की बातो पर यह दफ्तरी कारवाइ करने का आपको हक किसने दिया ?"

फातिमा बोली, "अरी हम दूसरो के बारे म कोई कारवाई नही करते। हम तो अपने बारे म ही दफ्तरी कारवाई करते हैं। सुरजीत तो मेरी चहेती सखी है। इसीलिए तो ,

प्यारो बोली, 'हा भई ! जो मन म आये सो करो। मियाँ बीबी राजी तो क्या करेगा काजी ? लेकिन हम तो यह पूछते है कि इस कारवाई मे हम तुम किसलिए घसीट रही हो ?"

फातिमा बोली, "वाह जी वाह ! क्या आप लोगो की सुरजी से कोई दुश्मनी है ? अरे भई, इस बेचारी की मदद करना तो हम सबका कर्तव्य है।'

अब प्यारो ने आगे को सरककर सुरजीत की बलाएँ लेते हुए कहा, "हाओहाय ! मैं वारी जाऊँ इस बेचारी पर। लेकिन इतना भी तो पता चले कि इस बेचारी को हुआ क्या है ?"

फातिमा बोली 'हुआ तो कुछ नही, होने जा रहा है।"

रत्नो बोली अजी क्या होने जा रहा है ?'

प्यारो ने अपने होठो पर उँगली रखते हुए कहा "चुप, चुप ! यही तो भीतर की बात है। अजी, यह समझने की बात है, मुह से कहने की नही।'

शीला बोली, 'हाय राम ! जब बात ही का पता नही चलेगा तो हम इस बचारी की सहायता कैसे करेंगे ?"

फातिमा बोली, 'सहायता करना कौन-सी मुश्किल है ? बस, जरा अपनी अपनी राय देती जाना।"

प्यारो बोली राय तो देंगे लेकिन यह भी तो पता चलना चाहिए कि किसके बारे म राय देनी होगी ? सुरजीत के बारे म ?"

फातिमा बोली, "उई अल्लाह ! रात-भर रोते रहे मरा एक भी

नही !"

अमरो बोली, "भई फत्ती ! तुम्हे इतना तो मालूम होना चाहिए कि अगर तुम भीतर की बात नही बताओगी तो हम लोग अपने फर्ज को कैसे समझेंगी ? कैसे उसे निभायेंगी ?"

फातिमा बोली, "बस, तुम लोग या तो इतनी बुद्धू हो या इतनी चतुर हो कि जब तक मैं मुह फाड के नही कहूगी, तब तक कुछ समझोगी ही नही !"

प्यारो बोली, "हा, भई, कह दो ! मुह जरा फाडकर !"

अब फातिमा ने अपनी नाजुक उँगलियाँ अकडाकर, हाथ आगे बढाते हुए धीमे स्वर मे कहा, "भई, इसके उसको तो ढूढना है ना ?"

शीला बोली, 'यह 'इसके' 'उसको' का क्या मतलब है ?'

फातिमा बोली, 'शीला ! जी चाहता है कि तेरी यह कूद फाँद करती हुई चोटी काटकर कुएँ मे फेंक दू !"

प्यारो ने कहा, "अरे भई, शीला का मतलब यह है कि जरा मुह और ज्यादा फाडकर कहो !"

फातिमा बोली, 'मेरी तो समझ मे नही आता कि मैं अपना मुह फाडूँ या इसका सिर !"

प्यारो ने बडी गम्भीरता से कहा, 'मेरे खयाल म इसका सिर फाडने से कोई फायदा नही होगा ! तुम्ही अपने मुह को जरा-सा और फाडो !"

"वाहियात ! बिलकुल वाहियात !" फातिमा ने ताव मे आकर अपने घुटने पर जोर से हाथ मारते हुए कहा।

इस पर बैलगाडी मे शोर मच गया जसे बहुत सी चिडियाँ एक साथ ही चू चूँ करने लगी हो। तब प्यारो ने दोना हाथ उठाकर सबको शान्त हो जाने के लिए कहा, फिर बोली "यह फत्तो तो यूँ ही इधर-उधर की हाँके जा रही है। मैं तुम्ह बताती हूँ कि बात क्या है।"

अमरो बोली, 'हाँ हाँ, मुह फाडने म तो तुम्हारा कोई जवाब नही !"

यह सुनकर प्यारो न अमरो की ओर लाल लाल आँखो से देखा, केवल देखा और फिर सबसे कहने लगी, 'मैं पूछती हूँ कि क्या तुमको यह याद

नही रहा कि अबकी मले म अपनी सुरजी के लिए एक ऐसा युवक ढूँढना है जो "

अमरो से चुप न रहा गया, बीच म ही कूद पडी "जो क्या ?"

अमरो की बच्ची ! तू बडी टर-टर कर रही है ।" प्यारो खीझकर बरस पडी, 'याद रखियो कि अगर तू बाज न आयी तो खैर जान दो ! हा, तो मैं यह कह रही थी, हम सुरजी के लिए लडका ढूढना होगा।'

मोटो बोली 'हाँ, हाँ इस बेचारी की हम इतनी सी मदद तो जरूर करनी चाहिए ।'

फातिमा ने बात समझायी 'मतलब यह कि जो होगा सो सखिया की राय स होगा । हम देखना यह है कि जो भी लडका हो, वह हमारी सुरजी से इक्कीस होना चाहिए, उन्नीस नही ।'

अमरो ने कहा अजी यह कैस हो सकता है ? अगर लडका इक्कीस होगा तो हमारी सुरजी फौरन ही बाईस हो जायगी । अगर वह तेईस हो जायगा तो यह फौरन चौबीस हो जायगी ।'

फातिमा बोली, 'अरी छोडो यह बीस बाईस चौबीस का चक्कर । मैं तो यह पूछती हूँ कि तुम लोग भीतर का मतलब समझ भी गयी या नही '

कुछ लडकियाँ बोली, 'हाँ, हाँ, समझ गयी । अरी, यहाँ सब कुछ समझे बैठे हैं यह तो यू ही तुम्हारी आयँ बायँ शायँ सुन रहे थ और तेरी अदाएँ देख रह थे ।'

प्यारो ने टहोका लगाया "भई अदाएँ तो समझ गये, लेकिन यह आयँ बायँ शायँ क्या होता है ।"

अमरो बोली, 'भई, अभी तुम दूधपीती बच्ची हो ! अभी तुम्हारे आयँ-बायँ-शायँ समझने के दिन नही आये ।'

उस समय बैलगाडी बडी तेजी से भाग रही थी । अचानक ही एक पहिया ठोकर खाकर जोर से ऊपर को उछला इतने जोर से कि गाडी उलटते उलटते बची । सभी लडकियाँ चिल्ला पडी । साथ ही फातिमा ने चिल्लाकर गाडीवान से कहा 'ऐ बाबा ! जरा देखकर चलाओ गाडी ! नहीं तो अभी बता दूँग चाचा बागडसिंह को ।"

"क्या बात है, छोकरियो ?" बागर्डसिंह घोडे को एड लगाकर उनके पास आ गया था।

फातिमा ने गरदन आगे बढाकर बाहर की ओर झाका, फिर अपनी चुधी चुधी आखो को और भी सुकडाकर बोली, "देखो, चाचा, यह बाबा बडी तेजी से गाडी भगा रहा है। अभी एक पहिया जोर से उछल गया था। गाडी उलटते उलटते बची ! कही उलट जाती तो हमम से हर एक की कोई-न-कोई तो हड्डी जरूर टूट जाती !"

फातिमा बाबे की शिकायत तो नही लगाना चाहती थी, लेकिन चाचा बागर्डसिंह से भी डर लगता था। उसने अचानक पहुँचकर पूछ लिया था कि इतना शोर क्यो मचा रखा है ? इस बात का उत्तर देना भी तो जरूरी था ! इसीलिए उसने सारा इलजाम बाबे पर रख दिया वरना चाचा बागर्डसिंह उन्ही पर बरस पडता।

अब बागर्डसिंह ने लगाम को झटका देकर घोडे को चार कदम आगे बढाया और गाडीवान के बराबर पहुँचकर करख्त लहजे मे बोला "ओए बाबा ! तू भाँग तो नही पीके आया है ?"

"नही, बागर्डसिंह सरदार !"

"अभी तो गाडी उलटने लगी थी "

"वह तो न जाने कहा से सडक पर ईंट पडी थी, पहिया उसी पर उछल गया "

"अबे, तुझे यह तो मालूम है ना कि तेरी गाडी मे सब छोकरियाँ बठी हैं ?"

"आहो जी, मालूम है।

"मालूम है के बच्चे ! जब मालूम है तो फिर गाडी को इतन जोर से क्यो भगाता है ? गाडी उलट जाती तो छोकरियो की हड्डी-पसली तक न बचती।"

बागर्डसिंह को गुस्से मे देखकर बाबे की कुछ और कहन की हिम्मत नही हुई। बागर्डसिंह की आँखें देर तक बाब पर आग बरसाती रही। फिर एक शोला उसके मुह से भी निकला, "याद रखियो ! जो होश स गाड़ी नही चलायी तो तेरा मोर बनाकर बबूल पर टाग दूगा !"

बाबे को इस तरह डांट पड़ने देख लड़कियाँ घुटनों में मुंह डालकर खी-खी करने लगीं। वैसे वे मन-ही-मन पछता भी रही थीं—खामखाह बेचारे बाबे को डांट खिलवायी।

बाबे को डांटकर बागड़सिंह ने सिर ऊँचा करके देखा और अपने साथियों से बोला, अब तो हम करीब करीब आ ही पहुँचे हैं। क्यों, बोतासिंह अब दो कोस से ज्यादा तो सफर नहीं रहा होगा ?'

बोतासिंह बोला, "आहो भापे। सचमुच अब तो आ ही पहुँचे हैं। देखो, दूसरे देहातों से भी लोगों की टोलियां बढ़ी चली आ रही हैं।"

बागड़सिंह ने रिकाबों पर खड़े होकर चारों ओर नजर दौड़ायी। दूर-दूर से खेतों में होकर जानेवाली पगडण्डियों पर लोगों के छोटे बड़े काफिले गाते-बजाते अपनी मंजिल की ओर बढ़े जा रहे थे। उनमें से कुछ ढोलकियां और छैने बजाते हुए और साथ ही ऊँचे स्वर में 'शब्द' गाते बढ़ रहे थे। उनके साथ औरतें भी शब्द गा रही थीं। बाज मनचले जवान लाठी से बँधी हुई लकड़ी की गिलहरियां हवा में उठाये हुए थे। जब वे उन गिलहरियों से जिसे वे लोग गालड़ कहते हैं, बँधी हुई लम्बी रस्सी को नीचे से खींचते तो लकड़ी की गिलहरी 'कट कटा कटा कटा कट कट' बोलती और उससे ही गीतों के बोल भी वातावरण में गूंज उठते। एक समां सा बँध जाता। कुछ लोग अलगोजे बजाते चले जा रहे थे। उनके सिर के जूड़ों पर बँधी हुई जालियों के लटकते फुन्ने अपनी बहार अलग दिखा रहे थे।

मेले के निकट पहुँचते-पहुँचते सूर्य अस्त हो गया। लेकिन दिन बड़े होने के कारण अभी काफी प्रकाश फैला हुआ था। दुकानदारों ने अभी से अपने गैस जला लिये थे।

दूर से मेले का स्थान यूं दिखायी देता था, जैसे वीरान में एक छोटा-सा नगर बस गया हो। हर ओर औरतों, मर्दों, बच्चों और बूढ़ों की रेल पेल थी। घोड़े, गधे, ऊंट, बैल भेड़ें और बकरियां भी जगह-जगह झुण्ड बनाये खड़ी थीं। उनकी मिली-जुली आवाजें, यानी ऊँट की बलबलाहट, घोड़ों की हिनहिनाहट, गधों की चीपों-चीपों और भेड़-बकरियों की मैं मैं के साथ आदमियों की आवाजें घुल-मिलकर अजीब समाँ बाँध रही थीं।

दूर-दूर तक लोगों ने छोटे-बड़े तम्बू तान रखे थे।

मेले के सिर पर ही बागड़सिंह ने अपने काफिले को रोका और बोतासिंह से कहने लगा, 'देख, बोतया! यहाँ तो हर ओर तम्बू ही-तम्बू दिखायी देते हैं।'

"आहो, भापे।"

बागड़सिंह ने घूमकर बोतासिंह की ओर देखा। उसके माथे पर बल पड़ गये। उसे इस बात की आशा नहीं थी कि बोतासिंह केवल उसकी हामी ही भरकर रह जायेगा।

बोतासिंह की समझ में खुद नहीं आ रहा था कि अब क्या किया जाये। उसकी गम्भीर शक्ल और खुले हुए मुँह को देखकर बागड़सिंह की झल्लाहट दूर हो गयी और वह बेअख्तियार हँसकर बोला, "ओय, भापे देया पुत्रा! आहो कहने से काम थोड़ा चलेगा! अब देखना तो यह है कि हम अपना तम्बू कहाँ गाड़ें?"

"भापे, यही तो मैं भी देख रहा हूँ।'

बागड़सिंह ने हँसकर घोड़ा उसकी ओर बढ़ाया और उसके घोड़े के साथ सटा दिया। फिर उसकी पीठ पर प्यार भरी धौल जमाकर बोला, "भूतनी देया! यहाँ खड़े-खड़े क्या पता चलेगा? जा ज़रा एक चक्कर लगाके तो आ? शायद कहीं खुली और ढंग की जगह मिल जाये।'

बोतासिंह ने उसकी ओर देखे बिना ही उत्तर दिया "अच्छा भापे, मैं अभी जाकर पता लगाता हूँ।'

यह कहकर बोतासिंह ने पहले अपने घोड़े की पसीने से तर पीठ को थपथपाया और फिर एड़ लगाकर बोला चल, बेटा चल! अब तो छोटा-सा चक्कर ही लगाना है। घबराने की ज़रूरत नहीं। अब कोई लम्बा सफर नहीं करना पड़ेगा।'

इसके बाद बोतासिंह आगे बढ़ गया और थो[illegible] मे मेले की भीड़ भाड़ में खो गया।

उधर लड़कियाँ बैलगाड़ी में [illegible] बिना
चाचा बागड़सिंह की आशा के [illegible]
बागड़सिंह को लौटते हुए देखा तो [illegible]

बोली, "अडियो ! बैलगाडी में धक्के खा खाकर मेरे तो अग दुखने लगे हैं।'

मसो बोली, "वाह रे नजाकत ! क्या दूसरे इ सान नही है ? हम-सबके अग तुम्हारी ही तरह दुख रहे हैं !"

अमरो ने कहा, "तब तो, भई, गाडी के बाहर निकलना चाहिए।"

शीला बोली, "वाह वाह ! बडी आयी कहीं से ! भला हम निकल ही कैसे सकती हैं ? चाचा बागडसिंह का कुछ पता है या नही ?"

अमरो ने कहा, "चाचा तो इधर को ही आ रहा है। उससे पूछ क्यो न लें ?'

शीला बोली, "हा, हा, पूछ लो ना ?"

अमरो ने घबराकर अपने सीने पर उँगली रखते हुए कहा, "क्या मैं पूछू ?'

शीला बोली, "और नही तो क्या तेरा बाप पूछेगा ?"

अमरो बिगड पडी, ' देख, शीला की बच्ची ! यह जो बाप तक पहुचेगी ना, तो तेरी चुटिया उखाडकर चूल्हे मे भोके दूगी।'

अब फातिमा ने अपने दोनो कूल्हो पर हाथ रखकर कहा, "तुम सब बच्चा लोग हो। हम पूछते हैं, डरो मत, बच्चा !"

यह कहकर फातिमा ने बडी अदा और शेखी के साथ गरदन ऊपर उठायी। लेकिन बागडसिंह का भयानक चेहरा देखकर उसकी सिट्टी पिट्टी गुम हो गयी और साबुन के भाग की तरह नीचे बैठते हुए उसने सुरजीत को कोहनी मारी, 'सुरजी ! ए प्यारी सुरजी ! तू ही पूछ ले ना ! इस मौके पर किसी और की हिम्मत नही हो सकती ! यह काम किसी और के बस का भी नही है।'

हिम्मत तो शायद सुरजीत को भी न होती, क्योकि चब्ब मे अपने बाप के सिर पर होते हुए तो वह डरनेवाली नही थी, लेकिन यहा पर तो सब कुछ चाचा बागडसिंह के ही हाथ मे था। वह अच्छी तरह जानती थी उसके गुस्से को। चाहे बाद मे उसे उसके बाप से डाट ही खानी पडे, लेकिन एक बार तो वह उस भी घुडकने से बाज नही आयेगा। इतने मे बागडसिंह का ध्यान उनकी ओर गया तो उसने पूछा, "कुडियो ! यह क्या खुसुर फुसुर

अन्दर तम्बू लग जाना चाहिए, क्योंकि रात के समय तो बडी मुश्किल पेश आयगी।'

बागडसिंह ने कहा, "मैंने बोतासिंह को कोई ढग की जगह देखने के लिए आगे भेज दिया है। वह अभी लौटकर आता होगा।'

यह सुनकर सरदारनी ने और कोई प्रश्न नहीं किया, बल्कि दूसरी औरतों के साथ बातचीत करने लगी। अधिकतर औरतें अपने हाथों से अपने पाव और पिण्डलियां सहला रही थीं।

उन्हें इस तरह व्यस्त देखकर बागडसिंह ने काफिले का चक्कर लगाना शुरू किया, ताकि वह देख ले कि सारी चीजें ठीक हालत में पहुच गयी हैं। उसने सारी बैलगाडियों की जाच पडताल की और अपने साथियों से बातचीत की। सब ओर से इत्मीनान हो गया तो वह फिर मेले की ओर देखने लगा कि शायद बोतासिंह आता दिखायी दे।

इतने में ही बोतासिंह घोडा दौडाता हुआ आया और बागडसिंह के पास रुककर हाफते हुए बोला, "भाप! मैं बहुत ही अच्छी जगह देखकर आया हूँ। गर्दी (भीड) बहुत है इसलिए जल्दी से चलो, ताकि कोई और वहां कब्जा न कर ले।"

यह सुनते ही बागडसिंह चौकन्ना हो गया। उसने कहा, "अच्छा, पहले हम चार पाच आदमी जाकर तम्बू गाडते हैं। बाद में सारी गाडियां वहीं पहुच जायेंगी।"

बस फिर क्या था! तम्बुओं का पूरा सामान उन्होंने एक बैलगाडी में से निकाला और इसे उठाकर बागडसिंहसहित पाच घुडसवार उस स्थान पर जा पहुँचे और देखते ही-देखते उन्होंने तम्बू तान दिया।

तब बागडसिंह ने बोतासिंह से कहा, "जा, बोतया, सारी गाडियां और सब लोगों को यहा ले आ।"

बोतासिंह घोडे को एड लेकर वहा से चल दिया। बागडसिंह ने देखा कि तम्बू का एक खूटा ठीक तरह से नहीं गडा था, चुनांचे उसने हथौडा उठाकर चार छ चोटें खूंटे के सिर पर जमायीं।

इतने में एक घुडसवार तेजी से दौडता हुआ आया और उसने बागडसिंह के निकट पहुचकर एकदम घोडे को रोक दिया। बागडसिंह ने सिर

ऊपर उठाकर देखा कि एक लम्बी, लहराती हुई दाढीवाला मजबूत सरदार घोडे पर सवार उसकी ओर देख रहा है। बागर्डसिह उसे पहचानता नही था। उसे कुछ आश्चय भी हुआ कि जाने यह कौन है और मुझसे क्या चाहता है। उस सरदार ने दो चार पल बागर्डसिह की ओर घूमकर देखा, फिर पूछा, "तुम्हारा ही नाम बागर्डसिह है ?"

"आहो।"

"बच्चू। तुम्ही ने मरी मूरी मसें चुरायी हैं ? अच्छा, पुत्तर, हम भी तुझे वटटोवट (सीधे रास्ते पर) डाल देंगे।"

बागर्डसिह इस किस्म की बातो से डरनेवाला नही था, लेकिन उसके मन मे यह जरूर खटक थी, आखिर यह आदमी है कौन ?

उस सरदार ने अपने घोडे को एड लगाते हुए भारी आवाज मे कहा, "मैं तारासिह हूँ!"

सात

तारासिह की यह बात सुनकर बागर्डसिह के कान खडे हो गये। वह उन व्यक्तियो मे से था, जिन्ह अपने-आप पर जरूरत स कुछ ज्यादा ही भरोसा होता है। यह ठीक है कि एसे लोग छोटी छोटी बातो से परेशान नही होत, लेकिन ऐसा भी होता है कि बाज समय ऐस लोग बुरी तरह फँस भी जाते हैं।

मामला ज्यादा गम्भीर था। तारासिह भी अपन इलाके का मशहूर व्यक्ति था और मेले म वह जरूर लडाई की पूरी तयारी करके ही आया होगा, वरना बागर्डसिह को इस तरह ललकारने की उसकी हिम्मत न होती। इधर बागर्डसिह की कोई तैयारी नही थी। उसके साथ लडनेवाल भी कुल दो-तीन आदमी ही थ।

थोडी देर बाद उनकी बैलगाडियाँ आ गयी। औरतें तम्बू म जा घुसी। उन्होने दो लालटनें जलाकर बीचवाल बाँस म लटका दी। लडकियाँ अपनी आदत के अनुसार खी-खी करती हुई तम्बू के अन्दर बाहर एक दूसर से पकड धकड करने लगी। कोई बडी बूढी डाँटती तो पल भर

को रुक जाती । लेकिन फिर वही हरक्तें शुरू हो जाती । बागर्डसिह ने भी देखा-अनदेखा कर दिया । उसने उन्हे ढील दे रखी थी यह सोचकर कि वेचारी मेले पर आयी हैं । थोडी उछल-कूद मचा लें ।

मर्दों ने अपने घोडा के लिए खुरलियाँ बनायी । कामो से निबटकर बागर्डसिह ने सोचा कि चोरी करते समय बोतासिह भी उनके साथ था, क्यो न अब दोनो आपस मे सलाह-मशविरा कर लें ।

उसने अपनी पगडी उतारकर अलग रखी और गरदन पर और कानो के आगे गिरे हुए बालो को समेटा और जूडे को एक बार फिर कसकर बाध दिया । उसन कुरता उतार दिया । अब उसके बदन पर केवल जामुनी रग का तहबन्द रह गया । सख्त चमडे के बने हुए देशी जूता म उसके पाँव भी अकड गये थे । उसने एक एक झटके से दोना पावा के जूत उतारकर परे फेंक दिये । फिर अपने भारी पपोटो को उठाकर बोतासिह की ओर देखा और बोला, "ओ बोतासिह !"

बोतासिह ने उजडडपन से मुह खोलकर बागर्डसिह की ओर देखा और बोला, 'अहो, भऊ !"

"जरा इधर आ।"

बोतासिह पास आ गया, तो बागर्डसिह ने कहा, 'जिस रात हमने भूरी मेस चुरायी थी, उस रात तुम हमारे साथ थे ?"

बोतासिह न नाक चढाकर अपने कान को पीछे से खुजाते हुए उत्तर दिया, "आहो ! फिर ?"

"फिर यह कि मस के मालिक तारासिह को पता चल गया है कि हमी ने उसकी मस चुरायी थी।"

'फिर ?" बोतासिह ने ऐस अन्दाज मे पूछा जैसे यह कोई खास बात नही है।

बागर्डसिह को कुछ गुस्सा आ गया । बोला, 'भाई तारासिह भी इस मेले मे आया हुआ है।'

"आया है तो आने दो, हमे उससे क्या लेना ?"

"हम उससे कुछ नही लेना, लेकिन उस तो हमसे कुछ लेना है !'

"भाप ! तुम तो खामखा छोटी छोटी बातो को सोचने बैठ जाते हो।"

"ओए बोनया ! मैं सोचने नहीं बैठ जाता। अभी-अभी जब तुम बैल-गाडियाँ लाने गये थे तो तारासिंह यहाँ आया था। उसने मुझसे कहा कि तुमने हमारी भैंस चुरायी है।"

"लेकिन उसे पता कैसे चला कि भैंस हमने चुरायी है?"

'भाई, यह मैं कैसे बता सकता हूँ!"

"भापे, वह बदला चुकाना चाहता है तो चुकाने दो। हमने कौन चूड़ियाँ पहन रखी हैं?"

"ओए बोनया ! तू तो जानता ही है कि आज तक कोई माई का लाल बागड़सिंह को दबा नहीं सका सिवाय कावलासिंह के। मगर मैं यह सोचता हूँ कि हो सकता है कि वह पूरी तैयारी से आया हो और कहीं हम दबना न पड़े।"

"नहीं, भापे, भला किसकी इतनी हिम्मत हो सकती है कि बागड़सिंह से टक्कर ले सके?"

'भाई, वह भी तो अपने इलाके का बदमाश है।"

बोनासिंह ने मूछों को ताव देते हुए कहा 'पर, भापे, अगर उसने यहाँ लड़ाई करके हमें किसी हद तक दबा ही दिया तो फिर उसे भी तो यह बात याद रखनी चाहिए कि वह कावलासिंह से टक्कर ले रहा है।'

यह सुनकर बागड़सिंह का हौसला कुछ बढ़ा। दरअसल वह औरतों के साथ होने के कारण ही परेशान था वरना उन सबको वह जूते की नोक पर रखता।

पहली शाम को औरतें घूमने नहीं गयीं। वे बैलगाड़ी में बैठे बैठे इतनी थक गयी थीं कि उनसे हिला भी नहीं जा सकता था। हाँ, लड़कियों की तबीयत चुलबुला रही थी। उनकी थकान पन्द्रह बीस मिनट में ही दूर हो गयी थी। उनके बस की बात होती तो सारे मेले में घूम आतीं।

खाने के बाद उन्होंने बड़ी-बूढ़ियों से प्रार्थना की कि अगर और कुछ नहीं तो चलकर गुरुद्वारे में मत्था टेक आयें। बेचारी बड़ी बूढ़ियों को इस बात का होश ही कहाँ था। उलटे डाँट पड़ी कि यहाँ तो सारा शरीर

थककर फोड़े की तरह हो रहा है और इन लडकियां को अपनी चुलबुलाहट सूझ रही है ! बेचारी अपना सा मुह लेकर रह गयी।

दूसरे दिन जब तीसरे पहर सूय ने अपन उजले दामन को धीरे धीरे समेटना शुरू किया तो मेले की रौनक में कुछ मस्ती की ओस घुलने मिलने लगी और कुछ खरमस्ती या बदमस्ती के शोले भी लपकने लगे।

लगर स खाना खाकर बागडसिंह ने सार परिवार को समेटा और उन्हे अपन डेरे ल गया।

मल म शोर सा उठा। यह शोर किसी एक चीज का नही था, बल्कि यह मिला जुला शोर था। मेला जैसे अगडाइया तोडता हुआ जाग पडा था और जागते ही अपने चारो ओर एक तहलका मा मचा दिया।

हलवाइया न मेले का आनन्द लूटनेवालो को घटाओ की तरह उमड-घुमडकर आते देखा तो उन्होने अपनी भट्ठियो की आग तज़ करके उन पर घी के कडाहे चढा दिये। एक ओर पूडियो के लिए पेडे बेले जाने लग। शरबत सोटेवाले, फालूदा कुलफीवाले, झूलना झुलानवाले, बाहा और हाथा पर फूलो और परियो या चिकनी ठुड्डीवाली युवतिया के मुखडो पर बना-वटी तिल गोदनेवाले, बासुरी और बाजे बेचनेवाले, छोले और भटूरोवाले, सीख कबाब और भुनी कलेजी बेचनेवाले, कुम्हार, ऊँटनियो का ताज़ा ताजा दूध पिलानेवाले शुतरबान आदि—सभी तैयार हो बठे।

जब बैसाखी अपन जोबन पर पहुँची और उसके साथ ही बागडसिंह ने भी ललकार लगायी, "ओ कुडियो ! सभी तैयार हो जाओ !"

यह बात तो उसन कुडियो से कही थी, लेकिन उसकी पाटदार आवाज़ सुनकर बडी बूढियो के सीनो म उनके चोट खाये हुए दिल भी मचल उठे और वे अपनी तैयारियो मे लडकियो से पीछे नहा रही। चुनांचे कुछ देर बाद कुवारी लडकिया तम्बू से यू तडपकर निकली, जैसे अँधेरी गुफा से मासूम हिरनिया बिदककर भागती है। और उनक पीछे-पीछे अधेड उम्र की औरतें यू लुढकती दिखायी दी, जसे भारी भरकम मटको के नीचे टाग निकल आयी हो।

मेले मे घुसने से पहले बागडसिंह न पगडी के शमले को ज़रा ऊपर उठाते हुए पूछा, 'सबस पहले कहा चलने का विचार है ?"

यही बूढ़ियाँ तो एक दूसरे का मुंह देखने लगीं कि उनमें से कोई बताये। लेकिन लड़कियाँ तो पहले ही से अपना प्रोग्राम बनाये हुए थीं। जब बागड़-सिंह ने यह प्रश्न किया तो फातिमा ने दोनों पाँव पर उछलकर अपने बायें हाथ पर दायाँ हाथ मारा और फिर नाचती हुई आँखों से अपनी सहेलियों की ओर देखती हुई बोली, "भई सबसे पहले फालूदा खाया जाय।'

यह सुनकर सभी लड़कियाँ उछल पड़ीं और एक दो तो अपने पाँव पर उछलकर चारों ओर घूम गयीं।

ये लोग तम्बू से तो निकल आये थे, लेकिन अभी ऊँची कनातों के अन्दर ही थे। इस बात का फायदा उठाते हुए लड़कियों ने इधर-उधर फुदकना शुरू किया। किसी की चुदरी गिर पड़ी, किसी का पल्लू दूसरी ने खींच लिया और किसी ने अपनी ओढ़नी को जान-बूझकर नीचे गिर जाने दिया, ताकि शरीर को ओढ़नी उठाने के लिए झुकने लचकने, और बल खाने का अवसर मिल जाय। अब आगे आगे बागड़सिंह लठ टेकता हुआ चला। कुछ जवान उसके दायें-बायें और कुछ औरतों के झुरमुट के पीछे-पीछे चले ताकि कोई आदमी औरतों से बेजा छेड़खानी न करे।

जब वे फालूदावाले की दुकान पर पहुँचे तो दुकानदार ने ग्राहकों का इतना बड़ा झुण्ड देखकर अपने दाँत दिखाये और फिर उन्हें तम्बू में बिछी लम्बी बेंचों पर बैठा दिया।

केवल फालूदा खाने में ही मजा नहीं था, बल्कि यह देखने में भी मजा था कि दुकानदार शीशे के गिलास में फालूदा तैयार कैसे करता है। खास-कर लड़कियों के लिए तो यह बहुत ही अजीब तमाशा था। उन्होंने बढ़इयों को लकड़ी पर रन्दा चलाते तो देखा था, लेकिन यह दुकानदार तो बर्फ की एक बड़ी-सी सिल पर ही रन्दा किये जा रहा था! सिल से छिली हुई बर्फ मुरमुरे गोले की शक्ल में रन्दे के ऊपर उभरती आ रही थी और दुकानदार उस चुरमुराती बर्फ को गिलासों में डाल रहा था। तमाशा देखकर कुछ लड़कियाँ तो बिलकुल ही उछल पड़ीं और एक दूसरी को कोहनी से टहोके देती हुई बोली, 'देखो, ना अड़ियो यह तो बर्फ पर ही रन्दा किये जा रहा है!

बर्फ के ऊपर दूध, फिर रबड़ी मलाई आदि डालकर पीतल की एक

बडी बाल्टी मे से हाथ डुबोकर दुकानदार न फालूदे के लच्छे निकाले और उन तरतराते फिसलत लच्छो को हाथ ही म तौल तौलकर गिलासा म डालता गया। फिर उसने गाढे-गाढे लाल शरबत की बोतल म से थोडा-थोडा शरबत उँडेलकर गिलासा म मिला दिया। इसके बाद पीतल का गुलाबपाश उठाकर जब उसने फालूद के ऊपर छिडका तो अक गुलाब की खुशबू सारे तम्बू म फैल गयी। इतनी लम्बी कायवाही होत तक लडकियो के मुह कई बार पानी से भर आय और उन्होने बार बार फीके थूक को निगला। आखिरकार हरएक के हाथ मे जब गिलास पहुँचे तो उससे निबटने मे भी कई-कई तमाशे हुए।

फालूदा खाने म हरएक का अन्दाज अलग अलग था हरएक की समस्या भी अलग अलग थी। लम्बी मूछावाला को यह डर था कि फालूदे के लच्छे के साथ मूछो के लच्छे भी दाता म न जा अटकें। पोपल मुह की बूढी औरतो ने तो तग आकर चम्मच का सहारा ही छोड दिया और गिलास को सीधे मुह मे लगाकर गट से फालदा नीचे उतार गयी।

वहा से निकलकर लडकिया ने चूडियो की दुकाना पर हल्ला बोल दिया। उस जगह उन्ह ज्यादा बोलने और ज्यादा चहकने का मौका मिला। एक-दूसरी की राय से चूडियो के रग पसन्द किये गये। गोरी, सावली और जरा ज्यादा गहरे रग की बाहो के लिए अलग अलग रग चुन गये।

अब शाम का सितारा आकाश म आख झपकाने लगा था। दुकानो के कुछ गैस जल उठे थे और कुछ जलाये जा रह थे।

मेले से जरा हटकर कुछ रगीले बाके रग बिरगी पगडिया बाधे, कई कई बटनावाली वास्कटें लटकाय दो आदमिया को अपने घेरे म लिये हुए थे।

वे दोनो बीस और पतीस वष के बीच रह होगे। दोना के बाकपन की एक अदा तो यह थी कि पगडी के नीचे लटकनवाला शमला उन्होने इतना लम्बा छोड रखा था कि वह उनके एक कन्धे स घूमकर चौडे सीने से होता हुआ दूसरे कन्धे के पिछवाडे जरा नीचे तक लटका हुआ था। उनम से एक के हाथ म इकतारा था और दूसर के हाथ मे डफली। इकतारेवाले झूम-झूमकर अपना साज बजा रहा था और डफलीबाज सिर को

झटक-झटककर डफली पर थाप दिये जा रहा था। दोनों ही मस्त थे। उनकी आखें अधखुली थी, होठ भी अधखुले थे, जिनमे से उनके उज्ज्वल दात अपनी झलक दिखा रहे थ।

अब उन्होने मेले की सैर इस तरह की, जैसे कघी बालो म घूम जाती है। हर जगह रुक्त, ठिठकत और दुकानो पर निगाह डालते वे बढते चले गये। कही कही कुछ और भी छोटी-मोटी चीजें खरीदी गयी। नाम गोदने-वाले की दुकान पर मर्दों न डेरा डाला। किसी ने 'फूल', किसी न 'आकार', किसी ने 'परी' और किसी न अपना नाम बाजू पर गुदवाया। इस काम मे इतनी ज्यादा देर लगी कि औरतें और लडकियाँ बुरी तरह ऊब गयी।

आखिर वहा से फुसत पाकर आगे बढे तो एक बडे तम्बू के आग ऊँचे प्लेटफाम पर दो तीन लडकिया नाचती दिखायी पडी। उनके साथ एक मद भी था। वे लडकिया दरअसल लडकिया नही थी, लडका ने ही लडकियो का रूप धारण कर रखा था। ये नकली लडकिया ऐस फुदक फुदककर नाच रही थी और नाचत समय बेशर्मी से बल खा खाकर कुछ ऐसी हरकतें कर रही थी, जो लडकिया के बस की बात नही। लेकिन देखनवाले तो उन्हें लडकियाँ ही समझते थ। सुरजीत, फातिमा और दूसरी सहेलिया इन लडकिया की हरकतो को देखकर खूब झेंप रही थी, लेकिन उन्हें मजा भी आ रहा था और वे आपस म यह भी कह रही थी कि कितनी बेशर्म हैं य लडकियाँ।

बागर्डसिंह ने उनकी यह दिलचस्पी देखी तो हँसकर पूछा, 'क्यो कुडियो! अन्दर चलकर नाच देखोगी क्या?'

लडकियाँ तो इस बात पर उछलने लगी, लेकिन सुरजीत न जल्दी स कहा, नहा, हम बाइसकोप देखेंगे।

यह वह जमाना था, जब हिन्दुस्तान मे बोलती फिल्मो का किसी न नाम भी नही सुना था। इसलिए कही किसी छोटे बडे मेले म जो बाइसकोप पहुच जाता तो देहाती उसे देखे बिना न रहत। इस मेल म भी एक बाइस-कोप आया हुआ था। उन्होने काफी लम्बी चौडी जगह घेरकर चारो ओर कनातें तान दी थी लेकिन ऊपर छत आकाश की ही थी, जिसम तारे झिलमिलाते दिखायी देत थ। आगे जमीन पर बैठनवालो का टिकट दो

आने और पीछे लोहे की बेबाजूवाली कुर्सियो पर बैठनेवाला से चार आने वसूल किये जाते थे।

यह फिल्म बम चलती ही रहती। जिसका जब जी चाहता, टिकट लेकर जा बैठता और खेल खत्म होते ही बाहर निकल आता। अधूरी फिल्म देखी या पूरी इस बात का किसी को कोई ज्ञान ही नही था। हा, जिन देहातियो ने कभी शहर मे फिल्म देखी होती वह जरूर शुरू स लेकर अत तक पूरा खेल दखत। बीच बीच मे कभी कभार धाकडराजी भी होनी। मशीन भी एक ही थी इसलिए जब एक रील खत्म हो जाती तो बाइसकोप का आदमी जलता हुआ गैस बाहर स उठाकर अदर ले आता, ताकि आपरेटर दूसरी फिल्म चढा सके। इतनी देर तक लोग आपस मे बातें करते कोई हीर राझा गाने लगता और कोई अपनी लकडी की गालड ही बजाने लगता। एक दूसरे से दूर दूर बठे हुए यार दोस्त ऊँचे स्वरो मे पुकार पुकारकर एक दूसरे की मा बहना के ढँके छिप अगो का बडी बेतकल्लुफी से जिक्र करते। आखिर दूसरी रील चढ जान पर जलता हुआ गैस फिर बाहर हटा दिया जाता और एक बार फिर परदे पर नायक और नायिका की पकड धकड शुरू हो जाती।

जब बागडसिंह ने दखा कि सभी बाइसकोप देखना चाहत हैं तो उसने लडकियो से कहा "अच्छा, अगर तुम लोगो का यही मन है तो चलो बाइसकोप ही चलें।"

वे लोग बाइसकोप की ओर चल दिये। वहा जाकर पता चला कि खेल शुरू हो चुका था। लेकिन लडकिया मचल गयी कि जो कुछ भी हो वे बाइसकोप ही देखेंगी। बडी बूढी औरतें इतनी थक गयी थी कि उनका बस, यही जी चाहता था कि कही भी बैठ जायें, चाह वह बाइसकोप हो या खेत।

चार-चार आने का टिकट लेकर व लोग अदर पहुचे। वहा घुप अँधेरा ता नही था, लेकिन गैस की तेज रोशनी के बाद इतना अँधेरा भी काफी था, इसीलिए थोडी बहुत घपलेबाजी भी हुई—चार छ कुर्सिया भी गिरी, कुछ लडकियो के पायचे भी फट-फटा गये। लेकिन आखिरकार वे बैठ ही गये।

दो ही घडी मे बागडसिंह को याद आया कि उसने तो यह खेल पहले भी देख रखा था। जब दूसरो को इस बात का ज्ञान हुआ कि बागडसिंह यह खेल दोबारा देख रहा है तो वे उसकी खुशकिस्मती पर जलन सी महसूस करने लगे। अब बागडसिंह ने बडी शान से सबको उस खेल की कहानी समझाते हुए कहा, "यह खेल राजा हरिश्चन्दर का है। यह राजा हमेशा सच बोला करता था। इस खेल मे दिखाया गया है कि सदा सच बोलन से क्या क्या परेशानी हो सकती है। इस राजा का राज पाट छिन गया, बडी-बडी मुसीबतें आयी। तब उसने कानो को हाथ लगाकर भगवान मे प्रार्थना की, अब मैं कभी सच नही बोलूगा। फिर जब भगवान ने देखा कि इस सच्चे राजा की अक्ल अब ठिकाने लग गयी है तो उसने राजा को माफ कर दिया और उसका राज-पाट भी वापस दिला दिया—यह है इस खेल का मतलब।"

सभी सुननेवाला पर बागडसिंह की बातो का गहरा प्रभाव पडा। इतने मे रील खत्म हो गयी और ज्योंही जगमगाता हुआ गैस अन्दर आया त्योंही लोग ज़ोर ज़ोर से शोर मचाते हुए आपस म बातें करने लगे।

अभी दो ही रील दिखायी गयी थी और तीसरी रील चढायी ही जा रही थी कि कनात के बाहर कुछ भारी आवाजें सुनायी दी और फिर बडे धूम-धडाके से एक ऊँचा, लम्बा सिक्ख जवान अपने कुछ मित्रा के साथ अन्दर आया।

बागडसिंह की नजर एकदम उधर को उठी। जवान तो एक से एक थे, लेकिन उनमे सबसे आगेवाला ऐसा करारा जवान था कि देखने से भूख मिटती थी। बागडसिंह ने अन्दाज़ा लगाया कि वह युवक उसके मालिक काबलसिंह से भी चार अगुल ऊँचा होगा। आग म तपाये हुए ताँबे की तरह तमतमाता हुआ चेहरा, चौडा, ऊँचा और दमकता हुआ माथा, लम्बी कृपाणो की तरह उसके अबरू जिनके नीचे चमकती हुई आँखें और उनमे तेज़ी से घूमती हुई पुतलियाँ चेहरे पर छोटी छोटी दाढी, कानो के पास बालो की ओट म लटकते और दमकते हुए सोने के बाले। उसके चहरे पर सबस ज्यादा घमण्ड से भरा हुआ अगर कोई अग था तो वह उसकी ऊची नाक थी। उसके भरे-पूरे होठ अधखुले-से थे, जिनके कारण उसके अगले

दो दाता मे जडी सोने की कीलें दिखायी द रही थी। बालिश्त भर ऊची, लम्बी, मजबूत गरदन से लटका हुआ सोन का कण्ठा था। सिल्क के बहुत लम्बे कुर्ते पर अनगिनत सीप के सफेद सफद बटनावाली मखमल की वास्केट के नीचे उसका मूगिया रग का तहब द लहरा रहा था। पाव म भारी भरकम देशी जूते थे। इन जूतो की नोकवाली मूछें आग को बढकर पीछे को घूम गयी थी।

इस युवक का नाम सुजानसिंह था।

सुजानसिंह ने अन्दर आते ही अपनी तेज नजर पल भर को सारे मजमे पर डाली। एक बार तो लोगो की आवाजें भी दब सी गयी। सुजानसिंह मुह से कुछ नहीं बोला। वह अपन साथियो समेत कुर्सियो पर बैठ गया।

बागडसिंह और उसके सारे साथी नय आनेवाले युवक को देखत रह। बागडसिंह न धीरे स कहा, 'देखो तो, कैसा करारा जवान है! चिराग लेकर ढूढो तो भी न मिले—लाखो म एक है!

अब बोतासिंह धीमे से बोला, "सच कहत हो, भाप! एसा करारा जवान कभी मेर देखन मे नहीं आया। इसके सामने शेर भी न टिक सके!"

सुजानसिंह ने जरा गरदन झुकाकर अपने बगलवाले साथी स कुछ कहा तो उसने जोर स आवाज़ लगायी, "ओए मनेजरा!"

मनजर कहीं बाहर खडा था। यह आवाज़ सुनत ही वह भागा-भागा अन्दर आया। आत ही उसने अपने ढीले होत हुए तहब द को कसकर बाधा।

सुजानसिंह के साथी न उसी भारी आवाज़ मे कहा "ओए मैनेजरा! खेल मुडढो दिखाओ (शुरू स दिखाओ)!'

यह सुनकर मैनजर कुछ देर यू हक्का बक्का खडा रहा जस उसकी समझ म कुछ आ ही न रहा हा। एसी माग कभी कभार ही होती थी, जिसे मैनजर कभी कभार स्वीकार भी करता था।

सुजानसिंह न गरदन घुमाये बिना केवल आखा की पुतलियो को खट-से मैनेजर के चेहरे पर गाड दिया। मैनेजर को महसूस हुआ कि उसका तहब द फिर से ढीला हो गया है। चुनाचे उसने दोबारा तहब द के पल्लुओ को कसा और रोनी आवाज़ मे उत्तर दिया, "अच्छा जी!"

यह देखकर बागर्डसिंह की टोली को तो खुशी होनी ही थी, लेकिन दूसरे लोगों के भी हर्ष का ठिकाना न रहा, क्योंकि इस तरह उन्हें दोबारा खेल देखने का मौका मिल गया।

आखिर खेल खत्म हुआ तो भीड़ ज्वालामुखी के लावे की तरह बाहर निकली। उधर बाहर से अन्दर आनेवालों ने धक्कम-पेल की और अकसर लोगों की पगड़ियाँ उतर गयीं और टाँगें एक-दूसरे की पगड़ियों में उलझ गयीं। सुजानसिंह ने खड़े होकर अपनी लाठी जमीन से एक हाथ ऊपर उठाते हुए भारी लेकिन धीमी आवाज में कहा, "ओए ठहरो! पहले औरतों को निकल जाने दो।"

औरतें केवल बागर्डसिंह के साथ ही थीं। सुजानसिंह की आवाज़ सुनकर भीड़ काई की तरह फट गयी और लड़कियाँ, औरतें अपनी सलवारें सँभालती हुई भीड़ से बाहर निकल गयीं।

आठ

बाइसकोप देखने के बाद बागर्डसिंह अपने साथियोंसमेत जब वापस लौटा, तो रास्ते भर कुछ चुप चुप सा रहा। उसके मन पर सुजानसिंह का काफी प्रभाव पड़ा था। उसकी सूरत, उसका डील डौल उसके तेवर, सभी यह बताते थे कि वह आदमी काम का है। परन्तु बागर्डसिंह को अब संसार का थोड़ा बहुत तजुरबा भी हो चुका था। उसे काबलासिंह की बात याद थी और सुजानसिंह को देखकर तो मालिक का कहना उसके दिमाग में और ज्यादा उभर आया। बस, केवल एक बात उसके मन में खटकती थी वह यह कि सुजानसिंह उम्र के लिहाज़ से बिलकुल लौण्डा लपाड़ा सा था लेकिन इसके साथ ही उसे यह भी मानना पड़ा कि सुजानसिंह की हरकतों में ऐसा कोई छिछोरापन दिखायी नहीं दिया था, जो इस उम्र के युवकों में अकसर पाया जाता है।

बागर्डसिंह इसी उधेड़ बुन में अपने डेरे तक पहुँचा। सन्तसिंह तम्बू के पास ही टहल रहा था। वह काबलासिंह का बड़ा पुराना कारिन्दा था जो अब बुढ़ापे में कदम रख चुका था। बागर्डसिंह उसे डेरे की रखवाली के लिए

पीछे छोड गये थे।

डेरे पर पहुँचते ही औरतो ने तो एकदम हाथ पाव ढीने छोड दिय। वे तम्बू म घुसकर यो टागें फैलाकर लेट गयी, जैसे बहुत भारी युद्ध जीनकर आयी हो, पर मद लोग कनाता के बाहर ही घेरा बाधकर बैठ गय।

लडकियो को आज्ञा मिली कि वे भट्ठियो म आग जलाकर खाना तयार करें।

बागडसिह को चुपचाप दखकर बोतासिह न पूछा 'भाप, आज तुम चुप चुप क्या हो ?

बागडसिह के गले म काले ताग म पिरोयी हुइ दात कुरेदनी और उसके साथ ही काना का मैल खुरचनेवाली नन्ही सी चमची लटकी रहती थी। बागडसिह निठल्ला नही बठ सकता था फुरसत के मौका पर भी उसका हाथ चलता रहता। वह कुरेदनी से अपन दातो को कुरेदा करता या नन्ही चमची का कान मे घुमाया करता।

बोतासिह का प्रश्न सुनकर बागडसिह का चमचीवाला हाथ रुक गया। उसन अचानक हँसते हुए अपन छिदरे दातो की प्रदशनी की और फिर जमीन पर जोर से थूककर बोला, क्या मैं चुप-चुप हूँ ? '

बोतासिह ने महसूस किया कि बागडसिह उसे गच्चा द रहा है। और बागडसिह न खुद भी यही महसूस करते हुए एक जोरदार कहकहा लगाया। ऐसे नाजुक मौको पर जोरदार कहकहा खूब काम दे जाता है, लेकिन कह-कह के साथ उसे कुछ सोच विचार भी करना पडा। ऐस शातिर आदमी के लिए बात का रुख पलट देना कोई मुश्किल काम नही था। वह चहककर बोला, "भई, मैं तो कल की बात सोच रहा था।

बोतासिह न पूछा, "कल की क्या बात ?"

'जानते नहीं कल सौंची होगी। भाग दौड खेल और कुश्तियाँ होगी। भला हमारे जवानो मे से कौन-कौन जवान तैयार हैं ? क्या बिल्ले ?'

बिल्ले ने मुडी हुई अपनी लम्बी टागो पर से तहबन्द हटा दिया और उन पर ऐसे हाथ फेरन लगा, जस किसी बच्चे के गाल पर फेरा जाता है। फिर उन्हे दो बार थपथपाकर बोला 'भापे ! आपा दौड तो जरूर लगावेंगे।"

यह देखकर बागर्डसिंह की टोली को तो खुशी होनी ही थी, लेकिन दूसरे लोगों के भी हुष का ठिकाना न रहा, क्योंकि इस तरह उन्हें दोबारा खेल देखने का मौका मिल गया।

आखिर खेल खत्म हुआ तो भीड़ ज्वालामुखी के लावे की तरह बाहर निकली। उधर बाहर से अन्दर आनेवाला ने धकम पेल की और अकसर लोगों की पगड़िया उतर गयीं और टांगें एक दूसरे की पगडियों में उलझ गयीं। सुजानसिंह ने खड़े होकर अपनी लाठी जमीन से एक हाथ ऊपर उठाते हुए भारी लेकिन धीमी आवाज में कहा, "ओए ठहरो! पहले औरतों को निकल जाने दो।"

औरतें केवल बागर्डसिंह के साथ ही थीं। सुजानसिंह की आवाज सुनकर भीड़ काई की तरह फट गयी और लड़कियां, औरतें अपनी शलवारें सँभालती हुईं भीड़ से बाहर निकल गयीं।

आठ

बाइसकोप देखने के बाद बागर्डसिंह अपने साथियोंसमेत जब वापस लौटा, तो रास्ते भर कुछ चुप चुप सा रहा। उसके मन पर सुजानसिंह का काफी प्रभाव पड़ा था। उसकी सूरत उसका डील डौल उसके तेवर, सभी यह बताते थे कि वह आदमी काम का है। परन्तु बागर्डसिंह को अब संसार का थोड़ा बहुत तजुरबा भी हो चुका था। उसे काबलासिंह की बात याद थी और सुजानसिंह को देखकर तो मालिक का कहना उसके दिमाग में और ज्यादा उभर आया। बस, केवल एक बात उसके मन में खटकती थी वह यह कि सुजानसिंह उम्र के लिहाज से बिलकुल लौण्डा लपाड़ा सा था लेकिन इसके साथ ही उसे यह भी मानना पड़ा कि सुजानसिंह की हरकतों में ऐसा कोई छिछोरापन दिखायी नहीं दिया था, जो इस उम्र के युवकों में अक्सर पाया जाता है।

बागर्डसिंह इसी उधेड़ बुन में अपने डेरे तक पहुँचा। सन्तासिंह तम्बू के पास ही टहल रहा था। वह काबलासिंह का बड़ा पुराना कारिन्दा था, जो अब बुढ़ापे में क़दम रख चुका था। बागर्डसिंह उसे डेरे की रखवाली के लिए

पीछे छोड गये थे।

डेरे पर पहुँचते ही औरतो ने तो एकदम हाथ पाव ढीले छोड दिये। वे तम्बू म घुसकर या टागें फैलाकर लेट गयी, जैसे बहुत भारी युद्ध जीतकर आयी हो, पर मर्द लोग कनातो के बाहर ही घेरा बाधकर बैठ गये।

लडकियो को आज्ञा मिली कि वे भट्ठियो मे आग जलाकर खाना तैयार करें।

बागडसिह को चुपचाप देखकर बोतासिह ने पूछा, ' भापे, आज तुम चुप चुप क्यो हो ?"

बागडसिह के गले मे काले तागे मे पिरोयी हुई दात कुरेदनी और उसके साथ ही कानो का मैल खुरचनेवाली नन्ही सी चमची लटकी रहती थी। बागडसिह निठल्ला नही बैठ सकता था, फुरसत के मौको पर भी उसका हाथ चलता रहता। वह कुरेदनी से अपने दातो को कुरेदा करता या नन्ही चमची का कान म घुमाया करता।

बोतासिह का प्रश्न सुनकर बागडसिह का चमचीवाला हाथ रुक गया। उसने अचानक हँसते हुए अपने छिदरे दातो की प्रदर्शनी की और फिर जमीन पर जोर से थूककर बोला, "क्या मैं चुप-चुप हूँ ? '

बोतासिह ने महसूस किया कि बागडसिह उसे गच्चा दे रहा है। और बागडसिह ने खुद भी यही महसूस करते हुए एक जोरदार कहकहा लगाया। ऐसे नाजुक मौको पर जोरदार कहकहा खूब काम दे जाता है, लेकिन कह-कहे के साथ उसे कुछ सोच विचार भी करना पडा। इस शातिर आदमी के लिए बात का रुख पलट देना कोई मुश्किल काम नही था। वह चहककर बोला "भई, मैं तो कल की बात सोच रहा था।'

बोतासिह ने पूछा "कल की क्या बात ?"

"जानते नही कल सौची होगी। भाग दौड, खेल और कुश्तिया होगी। भला हमारे जवानो मे से कौन-कौन जवान तयार हैं ? क्यो विल्ले ?"

विल्ले ने मुडी हुई अपनी लम्बी टागो पर से तहबन्द हटा दिया और उन पर ऐसे हाथ फेरने लगा, जैसे किसी बच्चे के गाल पर फेरा जाता है। फिर उन्हे दो बार थपथपाकर बोला, "भापे ! आपा दौड तो जरूर लगावेंगे।"

अब वागडसिंह ने सिर को जरा दायें घुमाकर भूरे से पूछा, "क्यों भूरया ! तू तो किसी न किसी के साथ कुश्ती के दो हाथ दिखायेगा ही ?"

भूरे ने अपना सिर अकड़ी हुई गरदन के पीछे की ओर झुकाया और फिर दोनों हाथों से गरदन की मोटाई का जायजा लेते हुए बोला, "आहो, भापे ! जो तुम्हारा यही खयाल है, तो दिखा देंगे दो दो हाथ।

वागडसिंह फिर बोला, 'अबकी मेले में बड़े-बड़े बांके जवान आये हैं।"

बोतासिंह बोला, "हां, भापे ! इस सुजानसिंह को ही देखो ! मैंने अपने इलाके भर में ऐसा सजीला जवान नहीं देखा। क्या सीना था उसका, जैसे चक्की का पत्थर ! कैसे बाजू थे उसके, जैसे जटावाले नारियल !"

भूरा बोला, "यह सब कुछ होते हुए भी वह इकहरे बदन का ही नजर आता था।

बोतासिंह को भूरे पर गुस्सा तो आया कि उनकी बात बीच में ही काट दी, लेकिन अब उसे बदला लेने का मौका भी मिल गया। उसने अपने नथुने फुलाकर हँसते हुए पूरे हाथ से भूरे की ओर यों इशारा किया, जैसे उस-जैसा मूर्ख सारे संसार में न हो। फिर बोला 'वाह मेरे शेर ! उसका कद नहीं देखा, अरे वह तो छोटे मोटे दरवाज़े में से सीधा गुज़र भी नहीं सकता !

इधर ये बातें चल ही रही थीं, उधर कनात से घिरे हुए सहन में लड़कियों की बातचीत का भी यही विषय था लेकिन उनका दृष्टिकोण ज़रूर दूसरा था।

वैसे तो लड़कियाँ भी चाहती थीं कि वे आराम से लेट जायें, इसलिए नहीं कि वे थकी हुई थीं, बल्कि इसलिए कि मेले में उनका मूड ही ऐसा हो गया था। फिर भी उन्होंने खुशी खुशी खाना पकाने का काम अपने सिर ले लिया था।

बड़े-बड़े लक्कड़ भट्ठियों में ठूँस दिये गये ताकि आग बराबर जलती रहे। दो लड़कियों ने पीतल की बड़ी परात के दोनों ओर बैठकर आटा गूँधना शुरू किया जो पहले से ही भिगोया रखा था।

फातिमा ने ज़मीन पर बोरी बिछाकर उस पर लौकियाँ यों टिका दीं, जैसे वे किसी सेना के सिपाही हों और फिर एक डेढ़ फुटी कृपाण लेकर

उनके सिर उडाने लगी—यानी काम का काम और तमाशे का तमाशा। दूसरी लडकिया उसकी यह हरकत देखकर हँसने लगी।

जरूरी कामो से फुरसत पाकर लडकियो ने भट्टी के करीब ही घेरा डाल दिया।

फातिमा ने चिमटे को एक सिरे से पकडकर दूसरा सिरा हलके से रतनकौर की पीठ पर जमाते हुए कहा "क्या रतनो ? तुम्हे पसन्द है न? '

यह सुनकर रतनो चौंकी। माथे पर बल पड गये, फिर वह नागिन की तरह फुफकारकर बोली कौन पसन्द है ?

फातिमा ने अपनी नाजुक, गोरी उँगली अपनी सुबक नाक पर रखते हुए कहा, हाओहाय ! पसन्द भी आया और फिर हमी से पूछती है कि कौन पसन्द आया ? '

बचारी रतनो के हाथ पाव फूल गये। वह जानती थी कि जब फातिमा किसी को बनाने पर उतर आये, तो फिर उसकी खैर नही। चुनाँचे उसने अपने हाथ के साथ चुदरी का पल्लू भी झटकते हुए कहा ए फत्ती ! हमारा पीछा छोड दे। हम तुमसे फालतू बात नही करते और तू हमसे फालतू बात मत कर !'

फातिमा ने तो ठान ली थी कि आज रतनो को बनाया जायेगा, फिर भला उसे कौन रोक सकता था ? पीछे हटना तो उसने सीखा ही नही था। चुनाचे उसने हाथ बढाते हुए कहा, "वाह री मरी बन्नो, फालतू बात नही करती तो फालतू आखें क्यो नचाती रहती है ?

रतनो ने घुटनो पर रखी हुई कोहनी के ऊपर झण्डी की तरह लटके हुए ढीले ढाले हाथ को एक छोटा सा घुमाव दिया और फिर हथेली से अपनी ठुड्डी थामकर बोली, "हाओहाय ! कब आँखें नचायी मैंने ?

फातिमा बोली, आखें नचायी ही नही, बल्कि लडायी भी।'

अब तो रतनो की आँखो से आँसू उमडने लगे, वैसे उस मद्धिम प्रकाश मे कोई देख नही पाया। फातिमा उसी बनावटी ताव मे बोलती चली गयी, ' अजी, मै उस बाइसकोपवाले की बात कर रही हूँ।'

यह सुनकर बहुत-सी लडकिया मुट्ठी म मुह देकर हँसी क्योकि बाइस-कोपवाला तो अजीब ही बिखरी-बिखरी दाढी और सिर पर उडते हुए

वालो की छोटी-सी जूटीवाला अधेड उम्र का मोटा, थलथलाता और पिलपिला सा आदमी था।

फातिमा समझ गयी कि उसकी सहेलियाँ उसके इशारे का गलत मतलब ले रही हैं। रतनो के आँसुओं का बाँध टूटने ही वाला था।

फातिमा ने भाषण देने के अन्दाज से दोनों हाथ ऊपर उठाकर सबको चुप रहने का इशारा किया फिर धीरे से बोली, 'अजी, नहीं, मेरा मतलब तो उस सुजानसिंह से है।

यह सुनकर तो रतनो एकदम ही फफककर रो पडी। मूर्ख लडकी! कोई दूसरी होती, तो सुजानसिंह के साथ अपने नाम को नत्थी होते देखकर मन ही मन फूली नहीं समाती, परन्तु रतनो अगर वाकई मूर्ख नहीं, तो बेहद सीधी जरूर थी। सच्ची बात तो यह है कि अपने रंग रूप और नाक-नक्शे के एतबार से वह स्वप्न में भी यह नहीं सोच सकती थी कि सुजान सिंह-जैसा युवक उसकी ओर एक नजर भी डालना पसन्द करेगा।

इतने में मसो बोल पडी "ए फत्ती, क्या बेचारी के पीछे हाथ धोकर पडी है? यो ही बेपर की हाँके जा रही है। मैं कहती हूँ कि उस सुजानसिंह का जोडा मिलाना ही है, तो अपनी सुरजीत से मिला न!"

अब दूसरी लडकियो ने भी मसो की हाँ में हाँ मिलायी, "ठीक ही तो कहती है! दरअसल ऐसे बाँके जवान से सुरजीत रानी का जोडा ही ठीक बैठता है।

मसो ने सबकी शह पाकर फिर कहना शुरू किया, "सच्ची बात तो यह है कि रतनो की ओर सुजानसिंह ने एक बार भी नहीं देखा था। हाँ, सुरजीत की ओर उसने जरूर मौका पडने पर नजरें डाली थीं—बल्कि कहना चाहिए कि उस बेचारे ने अपने आपको रोकने की कोशिश तो की, लेकिन उसकी नजरें बेअख्तियार ही सुरजीत की बलाएँ लेने लगती थीं।"

खुल्लमखुल्ला खरी बात सुनकर फातिमा का हृदय उबल पडा। वह चाहती थी कि कुछ देर तक इसी गरमा गरमी के साथ बहस होती रहे। चुनाँचे उसने बनावटी गुस्से से चमककर कहा "वाह जी, वाह! ख्वामखा सुरजी को बीच मे घसीट रही हो! बात हम कर रहे थे वह बेचारी तो कुछ बोली भी नहीं। इसी को तो कहते हैं कि मारूँ घुटना और फूटे

आख !"

भला मसो अब पीछे हटनेवाली कहा थी! वह हाथ को खुरपी की तरह हवा म चलाते हुए वोली, "ए फत्ती ! जरा हमारी आखा म आखें डालकर बात करना। तरी आँख चुधी ही सही, लेकिन ताक-झाक करन म किसी से कम नही, बल्कि चार जूते आगे ही रहती है। भला यह कैसे हो सकता है कि हम सबने जो बात देख ली, वह बस तूने नही देखी। अरी, उसकी नजरें तो अपनी सुरजी के चेहरे के आस पास ही मँडराती रही।

अब सबकी आखे सुरजीत की ओर उठी और मसो बोली, अरी सुरजी ! मैं पूछती हूँ, यह क्या नखरा है ? औरा स क्या पूछना, फत्ती सुरजी स ही पूछ ले न कि वह उसकी तरफ देख रहा था या नही ?'

सबको अपनी आर देखते पा सुरजीत ने दोना घुटनो को बाहो म लेकर उनक बीच मे अपना चहरा छिपा लिया और अ दर स या बोली, जैसे कुएँ की तली से बोल रही हो जजी, जाओ ! तुम सब बडी शैतान हो !'

फातिमा को तो मजा ही आ गया। उसन महफिल को और ज्यादा गरम करन के लिए उसी बनावटी ताव मे कहा, "देखा न ! खामखा शरमा दिया बचारी को ! अरी उसस क्या पूछना ? इसकी ओर देखनेवाले सैकडा बल्कि हजारो जवान ह। इसन सबका खाता थोडे खोल रखा ह कि किसन किस समय इसकी ओर देखा ?'

मसो ने बिल्ली की तरह आखें निकालकर कहा, "इसन खाता नही खोल रखा, पर तून तो खोल रखा है न ? तुमन तो अपना खाता भी खोल रखा हे और उसका भी ! तुम्ही सीने पर हाथ रखकर कह दो कि वह इसकी ओर नही देख रहा था ?

अब फातिमा ने बडा सयानी समझदार औरत की तरह अपनी हथली पर ठुड्डी रखत हुए उत्तर दिया, 'भई, अब हम कसम तो खा नही सकत। भला कौन इस बात की कसम खाय कि किसने किसकी ओर देखा ? और सच्ची बात तो यह है कि अगर मैं इस तरह सभी का खाता खोलकर बठ जाऊ, तो तुममें से कोई एक भी न बचे। हरएक का भाडा बीच चौराहे पर फोडकर रख दू।'

अब कुछ लडकिया ने बीच मे पडकर मामला रफा दफा किया और

उनमें से एक ने राय दी, 'देखो, भई ! यह बात तो पहले से ही तय थी कि सुरजी के लिए अबकी मेले में कोई वर ढूंढा जायेगा। सो एक आदमी मिला तो ! अब तो केवल सबकी राय जानने की जरूरत है कि उन्हें यह जोडा पसन्द भी है या नहीं ?''

फातिमा ने मुंह सँवारते हुए कहा, ठीक है, पंचों का कहना सिर माथे पर !'

इस पर सभी लडकियों ने कहा, "हमें सुरजीत के लिए वह वर पसन्द है।"

अब वे सुरजीत की ओर देखने लगीं, ताकि उसकी राय भी जान सकें।

बेचारी सुरजीत को यह महसूस ही न होने पाया कि फातिमा ने कितनी होशियारी से उसके चारों ओर यह घेरा डाल दिया था। वह बेचारी सब सहेलियों को अपनी ओर टकटकी बाँधे देखकर बुरी तरह झेंप गयी। उसने पाँव के अँगूठे से धरती कुरेदते हुए कहा, "वाह ! तुम्हारे मेरे कहने से क्या होता है ? वर तो माता पिता ही चुना करते हैं।"

"वे सब बाद की बातें हैं। अभी तुम तो इस बात का जवाब दे दो।' अभी मसो की यह बात खत्म ही हुई थी कि बोतासिंह ने अन्दर झाँका। बेचारे को बडे जोर की भूख लग आयी थी। बोला, "अरी बुढियो ! कुछ खाने का इन्तजाम भी किया है या बातों की पकौडियाँ ही तले जा रही हो ?'

इस समय तक सुरजीत ने देगचे में कलछी चलानी शुरू कर दी थी। उसने भाप से आँखें बचाते हुए देगचे में झाँका, फिर पतली आवाज में बोली, ' अजी, सब्जी तो बिलकुल तैयार है। बस, अब हम तवा भट्ठी पर रखने जा रहे हैं।

दूसरा दिन मर्दों के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। गुरुद्वारे की ओर से भी बहुत कुछ होनेवाला था—खेल-कूद, कुश्तियाँ, बोझ उठाने का मुकाबला, गदका, निहंग सिंहों की नेजेबाजी और तलवारों के करतब। यह सब कुछ गुरुद्वारे की प्रबन्धक कमेटी ही कर रही थी। अव्वल आनेवालों को इनाम भी दिये जाते थे।

उस रोज औरतें जहा तक बन पडता, गुरुद्वारे की चहारदीवारी के अदर ही रहती। वे कीतन और पाठ का आन द भोगती, क्योंकि बाहर मेले म बाज युवक भाग की ठण्डाई पीकर या देशी शराब मे बुत होकर इधर-उधर मटरगश्ती करते और लटकते मटकते फिरते। बात बात म लाठिया उठ जाती या छविया चमकने लगती। गरज, वह दिन मर्दों ने खास अपन लिए ही निश्चित कर रखा था, ताकि वे मनमानी हुडदंग मचा सकें।

दिन भर रगरलिया मनायी जाती। भँगडा नाच नाचनवाली टोलियाँ मेले मे घूमती फिरती। उनके भँगडा गाना और हो हा की आवाज से सारा वातावरण गूज उठता।

बागडसिंह और उसके साथी आज अपने को बहुत ही हलका फुलका महसूस कर रहे थे, क्याकि सब औरतें और लडकिया गुरुद्वारे म जा घुसी थी सो आज उन पर कोई जिम्मेदारी नही थी। दिल खोलकर आवारा गर्दी करन के बाद जब उन्हाने देखा कि सौंची का समय हो चुका, तो वे बरगद के झुण्ड की ओर चल दिये।

ऊँचे-ऊँचे, भारी पेडो का सिलसिला कुछ दूर तक चला गया था। एक चौडा रास्ता इस झुण्ड म से ही होकर गुजरता था। इस समय वह झुण्ड बहुत ऊचे तम्बू की तरह दिखायी देता था। खिलाडिया के लिए काफी खुली जगह छोडकर लोग दो घण्टे पहले से ही वहा डेरा जमाये हुए थे। ज्यो ज्या इस खेल का समय करीब आता गया त्या त्यो भीड भी बढती गयी। यहा तक कि जिन लोगा को जगह नही मिली, व पेडो पर चढ गये।

खेल शुरू हो गये।

बोतासिंह ने अपना मुह बागडसिंह के कान के निकट लाकर कहा, "देखो तो भापे! वह सामने बाइसकोपवाला जवान ही है न?"

बागडसिंह ने फौरन ही उधर देखा। सुजानसिंह सबस जरा परे हटकर खडा था। बागडसिंह ने देखते ही कहा, 'क्या बात है ओए बोतया? या देखने मे ता यह काफी मोटा नजर आता था, लेकिन अब कुरता उतर जाने पर देखो कि उसके शरीर म एक तोला भर भी चरबी नहीं है।'

'फिर भी पूरा जहाज है, जहाज ! जरा पसलियो का फैलाव और बाजू की मछलियाँ तो देखो इसकी !"

बागड़सिंह ने एक मूछ घुमाकर दाँतो मे दबा ली और उसे धीरे धीरे चबाते हुए बोला "यार ! ऐसा जवान तो देखने मे नही आया।"

टोली के सभी लोग सुजानसिंह की तारीफ करने लगे। वे ही नहीं बल्कि आस पास बैठे हुए और लोग भी सुजानसिंह को देखकर प्रसन्नता और विस्मय प्रकट कर रहे थे। उन्ही मे से कोई बोला, "यारो ! अबकी साँची मे एक-से एक बढकर जवान आये हैं लेकिन वह दूर खडा जवान तो बस बजोड ही है।

उसका इशारा सुजानसिंह की ही ओर था। उसके निकट बैठे हुए एक आदमी ने बताया, उसका नाम सुजानसिंह है। वह लायलपुर का रहनेवाला है। बडा माना हुआ आदमी है—नामी धाकड। रावी के इस तरफ तो इसके मुकाबले का एक आदमी भी नही है। रावी पार की बात कह नही सकते।'

जीत भी सुजानसिंह की ही हुई।

खेल खत्म होने पर लोग तम्बुओ की ओर लौट चले। बागड़सिंह खयालो मे ही डूबा था कि एकाएक उसके सामने एक जवान कूदकर आ खडा हुआ और अपने खुले मुह पर मुट्ठी जमाकर बकरा बुला दिया।

बागड़सिंह ने चौंककर देखा—एक भारी भरकम जवान उसका रास्ता रोके खडा है। इतने मे बोतासिंह ने बढकर उस जवान के टेंटुए पर हाथ रखा और जोर से धक्का देकर बोला, 'ओय परां हट।"

वह जवान लडखडा गया तो बागड़सिंह आगे बढा। लेकिन पीछे से फिर बकरा बुलाने की आवाजें आने लगी। बागड़सिंह रुक गया। उसने घूमकर जवान की ओर देखा और बोला, जा पुत्रा ! अपनी बेबे के पास जाकर बैठ ! क्या मौत तेरे सिर पर मँडरा रही है !"

'मौत उसके सिर पर नही, तेरे सिर पर मँडरा रही है !' पास ही से एक भारी आवाज सुनायी दी।

बागड़सिंह ने देखा—ये शब्द कहनेवाला तारासिंह था। वह घोड़े पर सवार था और उसके बहुत-से साथी लाठियां हाथों में तौले बागड़सिंह की टोली को अपने घेरे में दबोचते जा रहे थे।

यह देखकर बागड़सिंह चकित रह गया। वह डरनेवाला आदमी तो नहीं था, लेकिन उसने देख लिया कि तारासिंह के लट्ठबाजों की संख्या उसके आदमियों से दो ढाई गुना ज्यादा थी और फिर वे शत्रुओं से घिरे जा रहे थे। बागड़सिंह ने लाठी उठायी और चिल्लाते हुए बोला, "ओए वीतया! इनके घेरे को तोड़कर निकल चलो!"

चुनांचे वे सब लाठियां घुमाते हुए उस दिशा को बढ़े जिधर अभी घेरा पूरा नहीं हुआ था। लेकिन तारासिंह के आदमियों ने देखते ही देखते उन्हें घेर लिया। बागड़सिंह ने देखा कि आठ दस कदम परे एक छोटा सा टीला है। उसने सोचा, अगर टीले पर चढ़ जायें, तो अच्छी तरह लड़ सकेंगे। लेकिन तारासिंह के आदमियों का हमला इतना जोरदार था कि बागड़सिंह और उसके साथी अपनी जगह से हिल भी नहीं पाये। दोनों तरफ से लाठियां घूम रही थीं। शुक्र है, किसी ने छवि का प्रयोग नहीं किया। फिर भी बागड़सिंह के तीन जवान पलक झपकते जख्मी होकर गिर पड़े।

यह ठीक है कि जिस रोज वे मेले में पहुंचे थे, उसी रोज तारासिंह ने उसे ललकारा था। लेकिन बागड़सिंह ने उसकी खास परवाह नहीं की थी, क्योंकि उसे यह थोड़े ही मालूम था कि तारासिंह उससे लड़ने के लिए पूरी सेना ही ले आयेगा। अब बागड़सिंह को साफ नजर आने लगा कि उनकी हार होने को ही है। जब काबलसिंह को इस बात का पता चलेगा, तो वह तारासिंह की ईंट-से ईंट बजा देगा, लेकिन इस बेइज्जती का दाग कैसे धुल पायेगा? जब लोग कहेंगे कि बागड़सिंह मेले से मार खाकर आया है तो उसके लिए डूब मरने के सिवा कोई चारा न रहेगा।

ये बातें सोचकर बागड़सिंह को मन ही मन में वाहगुरु अकाल पुरख की याद आने लगी।

इतने में उसने क्या देखा कि तारासिंह के आदमियों में भगदड़ सी मच गयी है। दूसरे ही पल उसे सुजानसिंह की शक्ल दिखायी दी, जिसने अपने

साथियोंसहित तारासिंह के आदमियों पर हमला बोल दिया था।

बागड़सिंह का दिल बल्लियाँ उछलने लगा। सुजानसिंह के साथियों की लड़ाई से ही उसने अन्दाज़ा लगा लिया कि उनके हाथ मँजे हुए हैं और फिर सुजानसिंह के क्या कहने! उसके हाथ में तो लाठी यों घूम रही थी, जैसे भँवर में तिनका! उसने किसी का सिर नहीं फोड़ा, किसी की टाँग नहीं तोड़ी, लेकिन उसकी लाठी का भरपूर वार दूसरे आदमियों के हाथ के करीब ही पड़ता! और वह भी इतने ज़ोर से कि लाठी सनसनाकर दुश्मन के हाथ से छूट जाती! इस तरह बागड़सिंह ने कई लाठियाँ हवा में उड़ती देखीं। तारासिंह के आदमी बौखलाकर भाग निकले। स्वयं तारासिंह ने भी फरार होना चाहा, परन्तु सुजानसिंह के एक जवान ने बढ़कर उसके घोड़े की लगाम थाम ली और धक्का देकर उसे नीचे गिरा दिया।

तारासिंह बुरी तरह सहम गया था। सुजानसिंह ने बड़े प्यार से चुमकारकर कहा, 'उठो सरदारजी, उठो!'

तारासिंह भीगी बिल्ली की तरह उठा तो सुजानसिंह ने ज़रा आगे को झुककर उसकी लम्बी दाढ़ी को अपनी हथेली पर तौलते हुए कहा, "सुनो तो! आपकी यह दाढ़ी आपके ही घोड़े की दुम से बाँधकर इसकी पीठ पर ऐसी चाबुक लगाऊँगा कि उसकी आवाज़ रावी-पार आपके घरवालों तक पहुँचेगी! आगे इस बात का ख़याल रहे!"

यह कहते ही सुजानसिंह ने तारासिंह की बगल में हाथ देकर उसे ऐसे ऊपर उठाया, जैसे यह बकरी का बच्चा हो और फिर उसे उसके घोड़े पर बिठाकर घोड़े की लगाम उसके हाथ में थमा दी।

तारासिंह और उसका घोड़ा दोनों ही सिर झुकाये वहाँ से चल दिये।

सुजानसिंह ने बागड़सिंह से कोई बात नहीं की। उसने अपने साथियों पर नज़र डाली, जो अपनी गिरी-पड़ी पगड़ियों को फिर से सिर पर बाँध रहे थे।

बागड़सिंह ने ख़ुद ही सुजानसिंह को धन्यवाद दिया। फिर भी सुजानसिंह कुछ नहीं बोला। केवल एक हलकी-सी मुसकान के साथ उसके होंठ ज़रा खुल गये और उसके अगले दो दाँतों में जड़ी हुई सोने की कीलें जगमगा उठीं।

नौ

अब मेला समाप्त होने म दो दिन बाकी थ। गोया दो रातें वहा विताकर तीसरे दिन सुबह ही बागडसिंह को अपने सब साथियों को लेकर चल्वे वापस लौट जाना था।

बागडसिंह ने बावलासिंह वाला काम अभी नही किया था। सबसे जरूरी बात तो यह थी कि उस काम के लिए कोई उचित आदमी ढूढा जाये। बागडसिंह की नजर म सुजानसिंह जँच गया था। उसन उसके डेरे का पता भी उससे पूछ लिया था।

उसी दिन शाम को बागडसिंह ने सुरजीत के बारे मे एक चौंका देने-वाली खबर सुनी और शाम को वह अपने घोडे पर सवार होकर मजार की ओर टहलने निकल गया। मजार स डेढ दो फ्लाँग इधर ही वह घोडे से उतर पडा और पास की कुछ ऊँची-ऊँची घनी झडबेरियो के पीछे घोडे को बाँध दिया और खुद धीरे-धीरे मजार की ओर बढा।

थोडी ही देर मे उसे जनाना हँसी की आवाज सुनायी दी और उसके कान खडे हो गये। वह नेवले की तरह कदम उठाता हुआ आगे बढा। सामन पडा का झुण्ड था। वह पेडो की ओट लेता हुआ आगे बढता गया। अब हँसी के साथ-साथ बातचीत की भनक भी सुनायी दने लगी थी। वह कान देकर सुनने लगा लेकिन बातें समझ म नही आयी।

आठ दस मिनट तक वह यो ही खडा रहा आगे बढने की कोशिश नही की कि कही उसे कोई देख न ले। इतना तो उसने पहचान ही लिया था कि वह आवाज सुरजीत और फातिमा की ही थी।

अँधेरा बढता जा रहा था, खासकर पडो के नीचे तो और गहरा हो गया था। एकाएक बागडसिंह को कदमो की आहट सुनायी दी, जसे कोई उसी की ओर चला आ रहा हो। वह सँभलकर अच्छी तरह पेड की ओट मे हो गया। इतने म उस फातिमा दिखायी दी। वह अकेली थी।

थोडी देर बाद सुरजीत और सुजानसिंह आते दिखायी दिये। वे दोना उसके पास स गुजरकर फातिमा म जा मिले, जो मजार के पास खडी थी।

फिर वहाँ उन तीनों में न जाने क्या गुमर फुमर होता रहा। इसके बाद बागड़सिंह ने देखा कि दोनों लड़कियाँ तो मेले की ओर चली जा रही हैं और सुजानसिंह मजार के पास खड़ा उनकी ओर देख देखकर हाथ हिला रहा है।

बागड़सिंह ने सोचा कि लड़कियों को तो अब जाने ही दूँ इनसे बाद को निपट लूँगा, अभी तो सुजानसिंह से ही दो-दो बातें होनी चाहिए।

लेकिन समस्या बड़ी टेढ़ी थी। मारे गुस्से के उसकी हथेलियाँ खुजा रही थीं। कोई और आदमी होता, तो अपनी लाठी के एक ही वार से वह उसे वहीं ठण्डा कर देता, लेकिन यहाँ मुकाबले पर था सुजानसिंह, जिससे लड़ना तो कठिन था ही, फिर उससे तो बागड़सिंह कुछ और ही बातें करने की सोच रहा था।

जब लड़कियाँ दूर मेले की भीड़ में खो गयीं, तो सुजानसिंह ने तौल-कर लाठी हाथ में उठायी और एक तरफ को चल दिया।

बागड़सिंह दो चार पल तो रुका रहा, फिर वह भी उसके पीछे-पीछे हो लिया।

एक दो बार सुजानसिंह ने अपनी रफ्तार कुछ इस अन्दाज से कम कर दी, जैसे उसे अपने पीछे पीछे किसी के आने का शक हो रहा हो। उस समय बागड़सिंह भी अपने कदम धीमे कर देता।

चलते चलते सुजानसिंह एकदम से रुका। फिर उसने घूमकर पीछे की ओर देखा। बागड़सिंह भी रुक गया। उसने अपने चेहरे को पगड़ी के शमले के पीछे छिपा रखा था, और फिर अब अँधेरा भी काफी बढ़ गया था। सुजानसिंह उसे पहचान नहीं सका। उसने भारी आवाज में गुर्राकर कहा, "क्या भाई! क्या जान प्यारी नहीं जो मेरा पीछा कर रहे हो?"

बागड़सिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने अपने चेहरे के आगे से शमला हटा दिया और फिर, नपे तुले कदम उठाता हुआ सुजानसिंह की ओर बढ़ा।

सुजानसिंह ने उसे निकट से देखा तो पहचान गया। साथ ही वह यह भी समझ गया कि बागड़सिंह को सुरजीत और उसके सम्बन्ध का पता लग चुका है। सुजानसिंह के लिए यह कुछ ज्यादा परेशानी की बात नहीं थी इसलिए उसने ठण्डे लहजे में कहा, "अच्छा, तो तुम हो बागड़सिंह है न

तुम्हारा नाम ?'

बागड़सिंह ने उसके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। केवल यह कहा, "सुजानसिंह, मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

दोनों अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर ऊँटवाले बिलोचियों के डेरे में पहुँचे और वहीं एक खाट पर बैठ गये। फिर बागड़सिंह ने कहना शुरू किया 'सरदार सुजानसिंह, अगर तुम्हारा मुझ पर उस दिन का एहसान न होता, तो आज मैं तुमसे बहुत बुरी तरह पेश आता। सुरजीत मेरे साथ है, उसकी जिम्मेदारी मुझ पर है और मुझमें इस तरह की हरकतों को सहन करने की ताकत ज़रा कम है।"

जब बागड़सिंह बोल रहा था, तो सुजानसिंह अपनी कलाईवाले लोहे के मोटे कड़े को आगे-पीछे कर रहा था। बागड़सिंह के शब्दों का सुजानसिंह के चेहरे पर कोई प्रभाव दिखायी नहीं देता था। जब उसने महसूस किया कि बागड़सिंह अपनी बात समाप्त कर चुका है, तो उसने बागड़सिंह की तरह ही ठण्डे लोहे के-से स्वर, लेकिन धीमे लहजे में उत्तर दिया, "तुम जानते हो कि अगर तुम किसी और तरह पेश आते, तो आज का दिन तुम्हारी ज़िन्दगी का आखिरी दिन होता।'

बागड़सिंह उस जवाब को माँ के दूध की तरह पी गया। उसने सुजानसिंह की ओर टकटकी बाँधते हुए देखा और कहा, "तुम जानते हो, सुरजीत किसकी लड़की है ?"

"नहीं। मुझे यह सब कुछ जानने की ज़रूरत नहीं है। मेरे लिए इतना ही काफी है कि मुझे वह लौंडिया पसन्द है और वह भी मुझे पसन्द करती है।'

"लेकिन तुम्हें यह पता होता कि वह किसकी बेटी है, तो तुम इतनी लापरवाही से बात न बनाते।'

'देखो बागड़सिंह, मुझे धमकियाँ न दो।"

"मैं तुम्हें धमकी नहीं दे रहा हूँ। तुम्हें, बस, होश की दवा पिलाना चाहता हूँ कि वह लड़की काबुलसिंह की बेटी है और काबुलसिंह बड़ा धाकड़ है।"

"कहीं ऐसा न हो कि होश की दवा तुम्हीं को पीनी पड़ जाये।'

अब बागड़सिंह ने महसूस किया कि इस तरह की बातचीत का कुछ भी नतीजा नही निकल सकता। दो चार पल सोचने के बाद उसने नरम लहजे मे पूछा, "अच्छा, तुम मुझे कम-से कम यह तो बता दो कि इस लडकी के बारे मे तुम्हारा इरादा क्या है ?"

सुजानसिंह ने भरपूर नजरो से उसकी ओर देखा और बोला, "उसे अपनी जोरू बनाने का इरादा है !"

"वह कैसे ?"

"जोरू कैसे बनायी जाती है, तुम जानते नही क्या ?"

"मेरा मतलब है कि अगर उसका अक्खड बाप न माना, तो ?"

"मैं उसके हाथ-पाव और मुह बाधकर जबरदस्ती उठा लाऊँगा।'

अब बागड़सिंह ने माथे पर बल डालकर कहा, "तो क्या तुम समझते हो कि चब्बे के मर्द चूडियाँ पहने बैठे हैं ?"

'चब्बे के मर्दों को भाड मे झोक दूगा और चब्बे गाव पर हल चलवा दूगा।"

जब धाकडपन से काम नही चलता, तो बुद्धि से काम लेना पडता है। बागड़सिंह ने काफी अक्ल दौडायी और बुजुर्गाना अन्दाज मे बोला, "देखो सुजानसिंह तुम जवान हो, हजारो, बल्कि लाखो म एक हो। अगर मैं ऐसी तरकीब बताऊँ, जिससे सॉप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे "

"मुझे लाठी की फिक्र नहीं होती। सॉप दीख जाये, तो उसका सिर कुचलने की ही फिक्र होती है।" यह कहते-कहते सुजानसिंह ने अपनी तेज नजरें बागड़सिंह की खोपडी पर जमा दी।

बागड़सिंह अन्दर से जल भुनकर कबाब हो गया, फिर भी सँभलकर बोला, "देखो सुजानसिंह, सीधी उँगलियो से घी निकल आये, तो उँगलियाँ टेढी करने की जरूरत ही क्या है ?"

अब सुजानसिंह कुछ सोच मे डूब गया, फिर उसने लाठी को धरती पर बजाते हुए पूछा, 'लेकिन यह हो कैसे सकता है ?'

'यह तो बिलकुल सीधी सी बात है। सुनोगे, तो फडक उठोगे।" यह कहते कहते बागड़सिंह ने अपना हाथ सुजानसिंह के कन्धे पर रख दिया और अपनी बात जारी रखी, "देखो, काबलसिंह की एक घोडी चोरी चली

गयी है। हमने अपने इलाके में तो उसकी काफी तलाश की, लेकिन अभी तक कुछ पता नहीं चला। इससे काबलासिंह को शक हुआ कि शायद घोडी रावी पार का कोई आदमी उडा ले गया है "

मुजानसिंह ने जम्हाई लेते हुए उलटा हाथ मुह पर रखा और बोला, 'लेकिन इसका लडकी से क्या वास्ता ?"

"सब्र करो वह भी बताता हूँ। काबलासिंह को अपनी घोडी मिल जाने की इतनी खुशी होगी कि वह तुम जैसे बहादुर जवान के साथ अपनी बेटी का रिश्ता करने को तैयार हो जायगा। आखिर तुममें कमी किस बात की है ? तुम यकीन करो कि अगर तुम उसका यह काम बना दो तो तुमसे सुरजीत का रिश्ता कराने की जिम्मेदारी मैं अपने सिर पर लेता हूँ चाहो तो चार सौ इनाम भी पा सकते हो।'

मुजानसिंह कुछ देर चुपचाप उसे घूरता रहा फिर धीरे-से बोला, "तुम्हे यह तो अच्छी तरह मालूम है न कि जिस बात की जिम्मेदारी अपने सिर ले रहे हो अगर वह पूरी न हुई तो तुम्हारे इस सिर की खैर नहीं।"

बागडसिंह के नथुने मारे खुशी के फडक उठे। उसने अपने सिर को झटका देकर कहा, "हा, हा, मालूम है ! अगर मैंने अपनी बात पूरी न की, तो अपनी यह खोपडी खुद ही तुम्हारे आगे झुका दूगा जो तुम्हारा जी चाहे, करना।"

अब सुजानसिंह ने अपने दोनों बाजू एक दूसरे के आर-पार करके सीने पर रख लिये और भारी स्वर मे बोला 'अच्छा, अब मुझे घोडी का हुलिया बता दो।

बागडसिंह ने पुलकित होकर घोडी का पूरा हुलिया बता दिया। सुजानसिंह सारी बात सुन चुका तो उसने अपना हाथ आगे बढाकर कहा, "अच्छा बागडसिंह, मैं घोडी की तलाश करूँगा, और आज से दस दिन के अन्दर अन्दर तुम्हे खबर पहुचा दूगा।"

बागडसिंह ने खुशी से फूलकर सुजानसिंह से हाथ मिलाया और बोला, "अच्छा, तो इसी खुशी में एक एक टिण्ड ऊँटनी का दूध पिया जाये।"

'हल्ला !'

यानी, अच्छा।

दस

मेला समाप्त हो गया। लोग अपने अपने घरों को लौट आये।

फातिमा बागर्डसिंह की बात सुनकर वहाँ से भाग निकली—पहले वह सुरजीत के घर गयी। सुरजीत घर में नहीं थी। पता चला कि वह देवी के छप्पड़ पर कपड़े धोने गयी है—चूँकि सुरजीत रात रीठा के पानी में उबले हुए कपड़ों को बाल्टी में डालकर सीधी छप्पड़ को नहीं जाती थी, बल्कि रास्ते में अपनी सहेलियों को भी बुलाती थी, इसलिए फातिमा भी उसकी सब सहेलियों के घरों से होती हुई बढ़ती चली गयी—सुरजीत कहीं नहीं मिली। अब फातिमा देवी के छप्पड़ को चल दी।

वहाँ पहुँची तो देखा कि सब सहेलियाँ पेड़ की छाँव तले बैठी कपड़े धोने की तैयारियाँ कर रही हैं। तैयारी तो कोई विशेष नहीं होनी थी, बस, यूँ ही काम शुरू करने से पहले कुछ देर गपशप उड़ायी जाती।

फातिमा को देखते ही सुरजीत चिल्लायी, "ए फत्तो! तू कहाँ मर गयी थी आज?"

"मरना कहाँ था। आज मैंले कपड़े ही नहीं थे जो मैं धोने के लिए ले जाती।"

"ठीक है, लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं कि तुम घर ही में घुसी रहती। तुमने मेरे पास आने का वायदा किया था?"

"भई वायदा तो किया था। मैं तुम्हारे घर आ भी रही थी कि रास्ते में मेरे आगे एक पहाड़ खड़ा हो गया।"

"सच फत्ती, तू बातें बनाने में बड़ी शेर है। नित नये बहाने बनाना तो तेरे बायें हाथ का खेल है—हम भी तो सुनें कि कौन सा पहाड़ था वह?"

"अरी क्या कहूँ, आज तो मेरी जान बाल-बाल ही बची।"

"इसका मतलब है कि पहाड़ तुम्हारे रास्ते में नहीं था, बल्कि आकाश से गिरा था। अगर तुम्हारे सिर पर गिरता तो इस समय तुम स्वर्ग में झूलना झूल रही होती।"

"हाँ, तुम तो चाहती हो कि मैं स्वर्ग का झूलना झूलूँ और तुम इधर

निश्चिंत होकर प्रेम का झूला झूलो—ठीक है भई अब तो तुम्हारा दिल कहीं और ही जा रहा है अब तुम्हें अपनी सहेलियों की क्या परवाह !"

'चल चल कोई जवाब नहीं बना तो लगी मुझी पर कीचड़ उछालने।'

"जानती हो वह पहाड़ था कौन—यही अपना चाचा बागड़सिंह।"

'बागड़सिंह ? ' सुरजीत ने आश्चर्य-भरे स्वर में पूछा।

'हां, हां, चाचा बागड़सिंह।'

"चाचा बागड़सिंह, चाचा बागड़सिंह की रट लगा रखी है, लेकिन यह भी तो बता कि उसने तेरा रास्ता रोका क्यों ? '

यह सुनकर फातिमा ने चुन्नी के पल्लू से अपने चेहरे और गरदन का पसीना पोंछा, दूसरी सहेलियों की ओर देखा, फिर मुंह बढ़ाकर सुरजीत के कान में कहा, "जरा उधर चलो तो बताऊं।'

फातिमा सुरजीत की कमर में हाथ डालकर उसे एक ओर ले गयी और फिर बेचैनी से बोली, "अरी, सुरजीत, आज तो गज़ब ही हो गया।"

"कैसा गज़ब ?'

'जब मैं तुम्हारे घर जा रही थी, रास्ते में चाचा बागड़सिंह मिला—मैं पास से ही गुज़रने लगी तो उसने मुझे रोककर कहा—'सुनो फातिमा ! तुम बड़ी शैतान होती जा रही हो !', मेरा तो कलेजा उछलकर हलक में आन फँसा मैं कुछ बोल भी न पायी थी कि उसने फिर कहा—'मेले में तुम सुरजीत को लेकर कहां जाया करती थी ?' यह सुनते ही मेरा तो लहू सूख गया। भला मैं क्या उत्तर देती ! मैं तो मुंह में चुन्नी ठूंसने लगी, ठूंसती ही चली गयी। मेरा चेहरा गर्म हो रहा था। मैंने सोचा कि आज मेरी खैर नहीं, और फिर मेरे बाद सुरजीत पर न जानें कैसी मुसीबत आये।'

यह सुनकर सुरजीत सहम गयी, "हाय, इसका मतलब तो यह है कि चाचा बागड़सिंह को सारी बातों का पता है।'

'चाचा बड़ा खुर्राट है लेकिन मैं तो चारों ओर अच्छी तरह देखती चलती थी। मैंने तो उसे कभी आस पास देखा नहीं न जाने उसे इस बात की खबर कैसे मिली !"

'हो सकता है कि सुजानसिंह ने ही कुछ कह दिया हो।'

"नहीं, नहीं, नहीं! मैंने तो उसे मना कर दिया था—और चाहे कुछ भी हो जाय, चाचा बागडसिंह को इस बात का पता नहीं चलना चाहिए।'

घबराती क्या है अब तो यह सोचना चाहिए कि अपनी जान कैसे बचे?"

'लो, तुम क्या मुझसे कम घबरा रही हो? पर मैं कहती हूँ, अगर कुछ होना होता तो अब तक हो गया होता पांच दिन तो गुजर भी चुके हैं"

"हां यह भी ठीक है। अच्छा तो फिर चाचा ने क्या कहा?"

'अरी हाँ, घबराहट मे मैं यह तो बताना ही भूल गयी कि जब मैं चुदरी का पल्लू मुह मे ठूसे जा रही थी तो चाचा ने अपना हाथ उठाया मैं समझी कि वह मुझ मारने जा रहा है मेरी हालत ऐसी हो रही थी कि न तो वहाँ से भाग सकती थी और न रुकने मे ही खरियत दिखायी देती थी, लेकिन यह देखकर तो मुझे बडी हैरानी हुई कि चाचा ने धीरे से मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, ऐसा नहीं किया करते बेटी तब मैंने उचटती हुई नजर उस पर डाली और वहा स एकदम भाग खडी हुई। अरी, सुरजी! जानती हो उस समय चाचा के होंठो पर हलकी-सी मुस्कान भी थी।"

"अरे! वह मुस्करा क्यो रहा था?'

"अजी यही तो समझने की बात है! हो सकता है तुम दोनो का प्रेम देखकर बडे बुजुग अब सुजानसिंह से तुम्हारे रिश्ते की बातचीत कर रहे हो।

सुरजीत ने एकदम अपना चेहरा दोनो हाथो म छिपा लिया, 'हट! बेशरम कहीं की।"

इतने म दूसरी सहेलियां भी दौडी चली आयी और उन्ह छेडती हुई बोलीं, 'यहा यह इतनी देर मे क्या खुसर फुसर हो रही है? हमे भी तो बताओ!"

बागडसिंह सरपट भागती हुई फातिमा को गली के नुक्कड पर ओझल

हाते देखता रहा और फिर उसने सिर को झटका देते हुए अपनी लाठी कंधे पर रखी और धीमे धीमे मुस्कराता हुआ आगे बढ गया।

बागडसिह सीधा काबलासिह के पास पहुचा, जो उस समय अपने खरास की मरम्मत करा रहा था। खरास के साथ जोता जानवाला ऊट पास ही गरदन उठाये खडा था।

काबलासिह ने पहले तो उचटती हुई नजर बागडसिह पर डाली फिर बढई की ओर देखते हुए बोला, 'क्या बात है, बागडेया?'

"सरदारजी, मैं सोच रहा था कि कल मागी बुलाये जायें इतनी फली हुई फसलें बिना मागिया के न कट सकेंगी न जान कब तक झमेला पडा रहे। मागी तो एक दो रोज मे सारा सफाया कर देंग।"

जब किसी जमीदार की फसले पककर तैयार हो जाती तो अक्सर फसल काटने के लिए दूसरे गाव से लोगो को बुलाया जाता था। उन्ह मागी कहा जाता था। जिन गावो क लोगो को बुलाया जाता वहा स लोग दूसरे रोज ढोल बजाते हुए दरातिया लेकर पहुच जात। फसलो का मालिक उन्ह खाना खिलाता। कुछ आराम करन के बाद मागी काम पर डट जात। जब तक मागी काम करत, तब तक ढोल बजानेवाले लगातार ढोल बजात रहत दिन ढल जाने पर ढोल बजानेवाले ढोल पीटते हुए आगे आगे चलते और पीछे पीछे मागी चले जाते। अगर कही काम बाकी होता तो मागी दूसरे रोज सुबह फिर आन धमकते। और एक बार फिर ढोल की डगाडग के साथ फसलें कटने लगती।

काबलासिह ने बागडसिह की बात का कुछ उत्तर नही दिया। वह बढइ से कहने लगा 'अब तो चक्की के पत्थर भी राहनेवाले हो गय है नत्थू को कल भेज देना—हमारे पाट राह दे।"

'बहुत अच्छा, सरदारजी।"

पसीने से तर बतर बढई बसूले से ठकाठक कर रहा था। काबलासिह अपनी ही धुन मे मस्त बागडसिह की ओर आया और उसके कंधे पर हाथ रखकर उस जरा दूर छप्पर के नीचे ले गया। उस समय उसका लाल चुकंदर चेहरा बहुत गम्भीर हो रहा था। कुछ दर मौन रहने के बाद उसन कहना शुरू किया, "बागडेया! अभी तक तो तेरे सुजानसिह का कुछ पता

नहा चला!"

"पर, सरदारजी, अभी तो दस दिन पूरे भी नहीं हुए हैं।"

"हाँ, वह तो ठीक है लेकिन यह बताओ, आदमी तो भरोसे का है ना?"

"अजी, बड़े भरोसे का! देखिए तारासिंह से झगड़ा होने पर उसने किस तरह हमारी इज्जत रखी!"

"हूँ!" काबलासिंह अब भी गहरी सोच में डूबा था। बागड़सिंह ने फिर कहना शुरू किया, "सरदारजी! वह आदमी नहीं हीरा है, हीरा!"

यह कहकर बागड़सिंह ने फिर एक बार सरदारजी के चेहरे का जायज़ा लिया। जब उस मालिक के चेहरे पर रुखाई, सख्ती नहीं दिखायी दी तो उसने दोनों हाथ मलते हुए खीसें निकालीं, "अजी, वह तो इतना जवान और खूबसूरत है कि देखने में भूख मिटती है। अजी, एक बार तो मेरे मन में यह बात भी आयी कि अगर आपको सुजानसिंह पसन्द आ जाय तो बिटिया सुरजीत से उसके रिश्ते की बात चलायी जाये!"

यह सुनकर काबलासिंह का लाल चेहरा और भी लाल हो गया। पहले तो बागड़सिंह डरा कि अभी गालियों की वर्षा हुई कि हुई। यह ज्वार भाटा आया जरूर, लेकिन न जाने कैसे काबलासिंह ने अपने मुह से गाली नहीं निकलने दी। बल्कि एक ऊँचे लम्बे गिद्ध की तरह अपनी बाहों को धीरे-धीरे हिलाते हुए वह इधर उधर टहलने लगा।

उस समय बागड़सिंह को एहसास हुआ कि उसे यह बात मालिक से नहीं कहनी चाहिए थी, क्योंकि हो सकता है कि काबलासिंह की नजर में कोई और लड़का हो! और अगर अब मालिक को सुरजीत और सुजानसिंह के प्रेम का पता चल गया तो फिर उसकी खैर नहीं।

टहलते टहलते एकाएक काबलासिंह ने रुककर कहा, "अच्छा, तो तुम्हारे खयाल में मँगनी बुलाने पड़ेंगे!"

बागड़सिंह इस तरह बात का रुख पलटते देखकर हर्ष से उछल पड़ा और फौरन बोला, "जी हाँ! मैं सोच रहा था कि यह सब काम जल्दी ही निबटा दिया जाये। वाहगुरु की कृपा से अबकी फ़सल इतनी अच्छी हुई

है कि अपने काम (कारिंदे) कटाई का काम दो ढाई हफ्ते लगाकर ही खतम कर पायेंगे।"

काबलासिंह रिश्तेवाली बात को चुपके से पी गया था, लेकिन बागड़सिंह मन-ही-मन डर रहा था कि अगरचे आज काबलासिंह ने उससे कुछ नहीं कहा, लेकिन फिर किसी रोज उसे लेने के देने पड़ेंगे। उसने बात जारी रखते हुए कहा, "मैं बूड़सिंह से भी मिलूंगा। जब से मेले से लौटा हूं उससे मुलाकात नहीं हुई। उससे पूछूंगा कि करियामे वढई और असगर तली से उसने कुछ और पूछताछ की या नहीं। इतने दिन हो गये हैं, अभी तक घोड़ी का कुछ पता नहीं चला?"

यह सुनकर काबलासिंह का खून फिर खौलने लगा। उसे बागड़सिंह की अक्ल पर ज्यादा भरोसा भी नहीं था, चुनांचे उसने हां में हां मिलाते हुए कहा, "ठीक है, अब जोर-शोर से घोड़ी की तलाश होनी चाहिए। मेरे खयाल में, तुम्हारे इस सुजानसिंह का भी कुछ पता नहीं—आये या न आये!"

बागड़सिंह के कानों पर ये शब्द हथौड़े की चोट की तरह पड़े। वह कुछ कहे बिना वहां से टल गया।

काबलासिंह से अलग होते ही बागड़सिंह जाकर घोड़े पर सवार हुआ और सीधा बूड़सिंह से मिलने को चल दिया।

रात भर वह बहुत परेशान रहा। सुजानसिंह अभी तक पहुंचा नहीं था, लेकिन बागड़सिंह को इतना विश्वास तो था ही कि घोड़ी का पता चले या न चले सुजानसिंह एक बार उससे मिलने के लिए जरूर आयेगा। अगर उसका सुरजीत से प्रेम न होता तो उसे भी इस बात पर शक हो सकता था।

मगर सबसे ज्यादा परेशानी की बात तो थी—कि काबलासिंह ने सुरजीत और सुजानसिंह के रिश्ते की बात सुनने तक पसन्द नहीं की थी। उधर सुजानसिंह भी एक धाकड़ था। सुरजीत से उसके प्रेम का भेद खुल जरूर जायेगा। तब काबलासिंह को यह समझने में भी देर नहीं लगेगी कि उन दोनों के प्रेम की शुरुआत मेले में ही हुई होगी। और इसकी सारी जिम्मेदारी बागड़ पर पड़ेगी।

इसके साथ ही बागर्डसिंह की आँखों के आगे कुछ ऐसे कारिन्दों की लाशें भी घूम गयी, जिन्हें काबलसिंह ने ठिकाने लगाकर बड़ी नहर में बहा दिया था या कहीं दूर अन्धे कुएँ में फिकवा दिया था। उनसे भी ऐसी ही एक आध भयंकर भूल हो गयी थी। बागर्डसिंह ने मन में सोचा कि अब तो वाहगुरु अकाल पुरख ही उसे काबलसिंह के क्रोध से बचा सकता है।

इसी उधेड़बुन में घोड़ा दौड़ाता हुआ वह बूड़सिंह के तबेले तक पहुँचा।

उस समय बूड़सिंह उबले हुए रीठा के छिलकों के पानी से अपने बचे-खुचे बाल धोकर उन्हें नीचे की ओर लटकाये खाट पर लेटा था। घोड़े के टापों की आवाज को सुनकर उसने सिर उठाया और बागर्डसिंह को देखते ही खिलखिला उठा। वह उठकर बैठ गया और दाढ़ी झटकाते हुए बोला, "आओ यार, बागर्डसिंह सरदार, मेले के बाद भी मेले की मस्ती तुम पर से उतरी नहीं तभी मुझसे मिलने भी नहीं आये।"

बागर्डसिंह ने घोड़े से उतरकर लगाम को शाखा से लटका दिया और बुरा सा मुँह बनाये बूड़सिंह की ओर बढ़ा, "ओए बूड़सिंहा! मस्ती कैसी? यहाँ तो जान की खैर नहीं।"

उसके मुँह से यह बात निकल तो गयी, लेकिन वह सुरजीत कौर और सुजानसिंह के प्रेम का भांडा कैसे फोड़ सकता था। उधर बूड़सिंह के कान खड़े हो गये। उसने बैठने के लिए चारपाई पर जगह छोड़ते हुए कहा, "तुम्हारी जान पर अब क्या मुसीबत आ गयी?"

बागर्डसिंह ने बात घुमाकर उत्तर दिया, 'यार तुम तो जानते ही हो, घोड़ी का भूत सरदार के दिमाग पर छाया हुआ है बताओ कुछ और पता चला या नहीं?'

'कोई पता नहीं चला। अपने गाँव का एक आदमी है, तुम उसे नहीं जानते। उसने बताया कि जिस रोज घोड़ी चोरी हुई, वह तुम्हारे तबेले के निकट से ही गुजर रहा था—उसने काबलसिंह की घोड़ी पर सवार एक आदमी को देखा!'

यह सुनकर बागर्डसिंह उछल पड़ा, "अरे, सच? तो उसने पहचाना नहीं कि कैसा आदमी था वह।

'उसका खयाल तो यह था कि काबलसिंह के कारिन्दों में से कोई

उस पर सवार था, बागडेया ! एक तो रात का अधेरा, फिर उस आदमी की कुक्रोवाली आख खुद ही सोचो कि उसने क्या देखा होगा और क्या पहचाना होगा अगर गधे पर कौआ बैठा हो तो वह यही समझे कि कावलासिह की घोडी पर कोई सवार बैठा चला जा रहा है। मुझे ता उसकी बात पर कोई भरोसा नही।"

निराश होकर बागडसिह कुछ कहने जा ही रहा था कि फिर उसने यह सोचकर जबान का रोका कि जरा सुजानसिह का भी पता चल जाय। अगर उसे भी घाडी का सुराग न मिला तो फिर—वह वरयामे तरखान (बढई) और अमगर तर्ली से अच्छी तरह निबट लेगा। बागडसिह ने बूडसिह को यह भी बताना उचित नही समझा कि मेले मे उसकी सुजानसिह नाम के किसी जवान से घोडी के सम्बन्ध म कोई बातचीत हुई थी।

कुछ दर तक बूडसिह से इधर उधर की बातें करता रहा, अन्त मे उसने मागी बुलाने की बात कही तो बूडसिह बोला 'चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।'

तब बूडसिह ने अपने सूखे बालो म कधा किया। बालो के साथ रीठो के कुछ छोटे मोटे छिलक निकल गये।

थोडी ही देर मे बूडसिह तैयार हो गया और वे दोनो घोडो पर सवार होकर आस-पास के गावो का चक्कर लगाने के लिए निकल पडे।

अगले दो दिन मागी ढोल बजा बजाकर काम करते रहे चूकि और कई जगह भी फसलो की कटाई हो रही थी, इसलिए मागी उतनी सख्या म नही आ सके, जितनी सख्या मे उनके आने की सम्भावना थी, इसीलिए तीसरे दिन भी माँगी काम पर लगे रहे। उस रोज़ इन्होन तय किया कि आज काम समाप्त करके ही दिन का खाना खायेंगे।

दो ढाई बजे के करीब काम समाप्त हो गया। उसके बाद खाना खाते-खाते चार बज गये। साढे चार के करीब ढोल बजानेवाले गले म ढोल डालकर उस बजाते हुए आगे-आगे चले और उनके पीछे-पीछे मागी भी चल पडे।

गरमी खासी बढ गयी थी। गाव से दूर अपन तबले म कावलासिह हलो को घुमा फिराकर उनकी जाँच कर रहा था। इस समय वह तबले के

ही एक कमरे में टूटे-फूटे हलों को देख रहा था। बागडसिंह ने कहा, "बढ़ई को बुलाकर इन सबकी मरम्मत करा लेंगे।"

लम्बे चौड़े भालू की तरह जरा आगे को झुका हुआ सा खड़ा काबलासिंह कुछ बोला नहीं। उसकी मजबूत बाहों के ऊपरवाले भाग का मांस लटककर कोहनियों तक आ पहुँचा था।

लेकिन बागडसिंह जानता था कि अब भी इन बाहों में बला की ताकत थी। अब भी अच्छा खासा जवान काबलासिंह से टक्कर लेने की हिम्मत नहीं कर सकता था। काबलासिंह ने बागडसिंह की बात का उत्तर नहीं दिया। उसने दीवार में गड़े खूँटे से लटकते हुए अंगोछे को उतारा और उसमें अपनी गरदन, चेहरे और बाजुओं का पसीना पोंछा, जिससे उसका लाल चेहरा और लाल हो गया। फिर उसने पगड़ी के नीचे से निकले हुए गुद्दी के बालों को ऊपर अटकाया और बागडसिंह की ओर पीठ करके कंधों को हिलाते हुए बोला, "बागड़े! वह तुम्हारा सुजानसिंह तो आज भी नहीं आया!"

बागडसिंह को कुछ उत्तर सूझ ही नहीं रहा था। दरअसल इस बात से कि उसने एक काम एक आदमी को सौंपा और वह आया भी नहीं, बागडसिंह की मूर्खता नजर आती थी। वह मन ही मन बुरी तरह झेंपता था।

काबलासिंह ने फिर कहा, "जानते हो, दस दिन भी पूरे हो चुके? आज ग्यारवाँ दिन है!"

"जी!" बागडसिंह ने बड़े कमजोर स्वर में उत्तर दिया।

इसके बाद कुछ पल काबलासिंह नहीं बोला तो बागडसिंह मौका पाकर खिसका और कमरे से बाहर निकल आया। सहन के दरवाजे से उसने दूर तक इस तरह नजर दौड़ायी जैसे सुजानसिंह आ ही रहा हो, लेकिन उसे कोई भी घुड़सवार दिखायी नहीं दिया।

दुबारा कमरे के अन्दर काबलासिंह के सामने जाने से उसे डर लग रहा था, इसलिए वह सहन के दरवाजे से बाहर निकल गया। अभी अभी छकड़े पर अनाज की बोरियाँ लायी गयी थीं, जिन्हें आदमी उतार-उतारकर पीपल की छाँव में बने हुए छप्पर के नीचे रख रहे थे। कुछ कारिंदे

मस्ती से बाँह लटकाये इधर उधर छोटे-मोटे काम करते फिर रह थे। गरमी और थकान के मारे उनसे तज़ी से चला भी नही जा रहा था। रहट के आग जुत हुए बैल भी बहुत ही धीरे-धीरे चल रह थे। कोई चिडिया उडती नहीं दिखायी देती थी, यह सारा वातावरण देखकर बागर्डसिह को बडी कोफ्त हुई। उसने रहट की भाल के पास पहुचकर दानो हाथा मे पानी भरा और उमके छोटे चेहरे पर दिय, फिर गीले हाथ गरदन पर मले, जिसम उसके दिमाग को ठण्डक का कुछ एहसास हुआ। उसके मन को एक दबी दबी सी फिक्र खाय जा रही थी—सुजानसिह आया नही। सुरजीत और वह एक-दूसरे को चाहने लग थे, जिसका भाडा कभी भी फूट सकता था। उधर घोडी भी एसी गायब हुई कि कही भी तो उसका सुराग नही मिल सका। उस आसमान खा गया या धरती निगल गयी!

आठ दस मिनट उसी उधेड-बुन मे गुजरे और फिर बागर्डसिह तबले की ओर बढा। सेहन के दरवाज़े मे घुसते समय उसने सिर घुमाकर एक बार फिर नजर दूर तक दौडायी लेकिन कुछ दिखायी नही दिया। वह निराश होकर गरदन घुमाने को ही था कि बहुत दूर धूल का एक छोटा सा बादल ज़मीन से उठता देखकर वह ठिठका, हालाकि वह जानता था कि सुजानसिह नही आयेगा। उसे घोडी का सुराग मिला नही होगा और उसन सुरजीत को प्राप्त करने की कोई और ही तरकीब सोच ली होगी। लेकिन फिर उसे छोट से बादल मे एक घुडसवार दिखायी दिया। घुडसवार तो बहुतेरे आते जाते रहते हैं लेकिन इस बात का भी तो पता चले कि वह घुटसवार सुजानसिह है या नही।

बागर्डसिह का एक पाव दरवाज़े की दहलीज़ के अन्दर पहुँच चुका था और दूसरा अभी बाहर ही था। देखते-देखते वह चौका, क्योकि उस घुड-सवार के पीछे एक काला घोडा और भी था।

बागर्डसिह का दिल ज़ोर-ज़ोर से धडकने लगा। क्या सचमुच सुजान-सिह न घोडी ढूढ निकाली थी? अगर सचमुच ढूढ निकाली हो तो फिर काबलासिह सुरजीत का रिश्ता मजूर न भी करे तो वह उस बहादुर जवान का ही साथ देगा।

ऐस कई तरह के विचार उसके मन मे घूमने लगे। कभी या लगता

कि शायद कोई और राहगीर है, जो फालतू घोडा अपने साथ लिए आ रहा है। लेकिन आखिर घुड़सवार इतने फासले पर आ गया कि बागड़सिंह ने घोड़ी पहचान ली—काली साटन की-सी चमकदार और अनोखी घोड़ी ! और उसके साथ जो घुड़सवार था उसका नाक-नक्श पहचानना अभी असम्भव था, लेकिन वस डील-डौलवाला जवान सिवाय सुजानसिंह के और कौन हो सकता था ?

अब बागड़सिंह भरपूर आवाज़ मे चिल्ला उठा, "सरदारजी ! सरदारजी !"

उसने दूसरा पाँव भी सेहन में अन्दर रखा। कमरेवाले दरवाज़े म काबलासिंह से उसकी टक्कर होते-होते बची।

काबलासिंह उसी की आवाज़ सुनकर बाहर की ओर निकल रहा था। उसने माथे पर बल डालकर बागड़सिंह की ओर देखा और बोला, "क्या हुआ है ? क्यो चिल्ला रहे हो इतना ?"

बागड़सिंह का जोश अभी तक कम नही हुआ था। उसने उसी ऊँचे स्वर मे उत्तर दिया, "सरदारजी वह वह सुजानसिंह आ गया !"

काबलासिंह ने अपने कूल्हों पर हाथ रखकर उसकी ओर ऐसे देखा, जैसे वह महामूर्ख हो और फिर सेहन मे थूकते हुए वह दरवाज़े मे से निकल गया।

बागड़सिंह भी मालिक के पहलू ब पहलू ही बाहर निकला। अब घुड़सवार और नज़दीक आ चुका था और बागड़सिंह उसे आसानी से पहचान सकता था। उसने कहा, "यही सुजानसिंह है सरदारजी !"

काबलासिंह फिर भी नही बोला। वह उसी तरह कूल्हो पर हाथ रखे आनेवाले घुड़सवार की ओर देखता रहा फिर उसकी नजर अपनी घोड़ी पर जम गयी, जिसे देखकर उसका चेहरा खिल उठा।

निकट आकर सुजानसिंह घोड़े से उतरा और बागड़सिंह ने आगे बढ़कर दात दिखाते हुए कहा, "आओ सरदार सुजानसिंह ! बड़ी राह दिखायी। तुम्हारा रास्ता तकते-तकते तो हमारी आँखें थक गयी।

जवाब मे सुजानसिंह के होंठ ज़रा से खुल गये, दाँतो मे जड़ी कीलें चमककर रह गयी !

इतने म काबलासिह भी आगे बढ आया। बागडसिह न हाथ से इशारा करते हुए कहा "यह हमारे मालिक सरदार कावलासिह हैं "

सुजानसिह ने एक कदम आगे बढाकर काबलासिह से हाथ मिलाया। जब बागडसिह न उन्हे पास पास खडे देखा तो उसे अपना अन्दाजा ठीक ही लगा—सुजानसिह सचमुच उसके मालिक से चार अगुल ऊचा हा था।

अब काबलासिह एकदम घोडी की ओर लपका। उसने उसकी गरदन को दोना बाहा मे ले लिया। कितनी ही देर तक वह उसी तरह खडा रहा। घोडी को सीने से लगाये और उसकी पीठ थपथपात हुए जब वह पीछे हटा तो उसका अपना कुरता और आस्तीनें घोडी के पसीने से तर हो चुकी थी।

उसने घूमकर फिर एक नजर सुजानसिह पर डाली। सुजानसिह असील मुर्ग की तरह अपनी पगडी की एक कलगी हवा म उठाय सहज भाव से खडा था। उसके खूबसूरत नाक नक्श मजबूत-ऊँची गरदन, चौडे कन्धे, सपाट सीना, दबा हुआ पेट और फिर उसके वह कपडे—सिल्क का कुरता, तूतिय रग का तहबन्द, पाव म सरसो के तेल स चुपडा हुआ भारी भरकम देशी जूता। सुजानसिह अकडा हुआ नहीं था, बल्कि सहज भाव से खडा हुआ था, फिर भी उसके अग अग से जवानी और सुन्दरता फूट रही थी।

काबलासिह दिल म उस जवान पर खुश था क्योकि वह उसकी जान से भी प्यारी घोडी को ढूढकर ले आया था। कावलासिह ने आगे बढकर सुजानसिह की पीठ पर हाथ रख दिया और पूछा, ' रास्ते म कोई तकलीफ तो नही हुई ?

"नहीं!'

वह दोनो तबेले की ओर बढे तो काबलासिह ने घूमकर कहा, "बागडेया! इनका घोडा छाव मे बाध दो कुछ दाना पानी उसके आगे रख दो।'

'अच्छा, सरदारजी!"

कावलासिह ने अपनी घोडी की लगाम पकड ली और सुजानसिह के साथ घोडी को भी अन्दर ले गया। उसने घाडी एक अन्य हवादार कमरे मे ले जाकर बाध दी।

बागर्डसिंह बाहर के काम से निवटकर अन्दर गया और उसने अपनी घोडी के आगे भी दाना-पानी रखाया और जब वह बडे कमरे म पहुँचा तो देखा कि वे दोनो एक भारी खुरदरी मेज़ के पास रखी लोहे की कुर्सियो पर आमने-सामने बैठे बातें कर रहे हैं।

बागर्डसिंह भी मुस्कराता हुआ आगे बढा और अपने मालिक के पीछे दीवार स टेक लगाकर खडा हो गया। काबलासिंह ने कहा, "सुजानसिंह, मुझे इस बात की खुशी है कि तुम घोडी ले आय। सचमुच हम तो निराश हो चले थे। अगर तुम इस काम म हाथ न डालते तो शायद मुझे यह घोडी कभी न मिलती।'

जवाब म सुजानसिंह केवल मुस्करा दिया और फिर उसने अपनी बायीं टाँग पर दायीं टाँग रखते हुए तहबन्द के बल दुरस्त किये।

काबलासिंह ने पूछा, "तुम कहाँ के रहनेवाले हो, जवान ?'

"मैं लायलपुर मे रहता हूँ।"

"किस गाँव म ?"

'चक दो सौ चौवालिस मे।"

"तुम लोग जाट हो ना ?"

सुजानसिंह के उत्तर देन से पहले बागर्डसिंह बीच मे ही बोल उठा, 'आहो सरदारजी, यह जाट हैं। इनकी अपनी ज़मीनें हैं। पहले यह शेखूपुरे म रहते थे। जब सरकार ने लायलपुर के आस पास की जमीनो को आबाद करन की योजना बनायी तो इनका खानदान वहा चला गया। इनके दादा सारे खानदान को लेकर वहाँ गये थे।'

काबलासिंह ने उसके इस हस्तक्षेप पर गुस्से भरी नजरों से उसकी ओर घूमकर देखा—खुद सुजानसिंह हैरान था कि बागर्डसिंह को उसके बारे मे इतनी बातें कस मालम हो गयी।

बेचारा बागर्डसिंह तो भीगी बिल्ली बनकर रह गया।

यही वह मेज थी जिस पर दौरे पर आनेवाले पुलिस के अफसर या दूसरे हाकिम शराब पीते और मुर्गे उडाया करते थे। लोहे की इन कुर्सियो का भी प्रयोग ऐस ही मौको पर कभी-कभार होता था। काबलासिंह रात के समय सुजानसिंह की अच्छी खासी दावत करन की सोच रहा था।

लेकिन उससे पहले ही जो उसे ख़याल आया तो उसने बागर्डसिह से कहा, "अरे, बागडे ! अभी तो हमने इन्ह पानी तक नही पूछा। जाओ तो, देखो, चाटी मे लस्सी पडी हो तो ले आओ !"

बागर्डसिह बाहर गया। घर से आये हुए मट्ठे का मटका कासे के कटोरे से ढका औलू मे पडा रहता था, ताकि मट्ठा ठण्डा रहे। जब जरूरत होती तो थोडे से गाढे मटठे मे बहुत सा ठण्डा पानी मिलाकर पतली लस्सी बना ली जाती।

बाहर पहुचकर बागर्डसिह ने मटके पर से छना उठाया और अन्दर झाककर देखा—मटके की तह मे थोडा सा गाढा मट्ठा दिखायी दे रहा था।

पीपल की शाखाओ से पानी की टिण्डें रस्सी से बँधी लटकी रहती थी। लू लगने से टिण्डो का पानी बफ के पानी की तरह ठण्डा हो जाता। बागर्डसिह ने एक टिण्ड उतारी और उसके मुह पर बँधा कपडा हटाया। थोडा पानी अपने हाथ पर डालकर देखा कि पानी खूब ठण्डा है—तब उसने मटके को एक हाथ से उठाकर कुछ मट्ठा टिण्ड मे डाल दिया और फिर दूसरे हाथ म छना (कटोरा) उठाय तबेले की तरफ चला—वह बहुत खुश था। एक तो सुजानसिह का वहा पहुँच जाना, फिर घोडी भी लेते आना, इससे बागर्डसिह की बिगडी हुई इज्जत फिर बन गयी थी।

अन्दर पहुचकर उसने कटोरा सुजानसिह के आगे मेज पर रखा और टिण्ड झुकाकर कटोरे को लस्सी से भर दिया।

जब सुजानसिह ने कटोरा होठो से लगाया तो काबलासिह बोला, "ओये, बागडेया ! जरा जाकर चार-छ अच्छे अच्छे मुर्गे तो झटका दे और हा, जरा बोतल का भी प्रब ध कर दे। आज की रात तो सुजानसिह हमारे पास ही रहेगा।"

बागर्डसिह के उत्तर देने से पहले ही सुजानसिह ने कटोरा मुह से हटा दिया और बोला, "नहा सरदारजी, मेरा जाना जरूरी है। मैं रुक नहीं सकूगा।'

काबलासिह बात करते करते चुप हो गया। कुछ आश्चय-भरी आवाज मे बोला, "रुक क्यो नही सकते ? अब शाम हो चली है, रात के समय कहा जाओगे ?'

"मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। आपके पास फिर कभी चला आऊँगा, लेकिन इस समय तो मेरा लौटना बहुत जरूरी है।

कावलसिंह पल भर चुप रहा, फिर एक हाथ हवा में हिलाकर बोला, "तुम रह जाते तो हमें खुशी होती... लेकिन अगर मजबूरी है तो... खैर!"

यह कहकर कावलसिंह उठा और एक अलमारी में ताक में रखी हुई लकड़ी की सन्दूकची का ताला खोला। उसमें से दस-दस रुपये के बीस नोटों की एक गड्डी निकाली और सुजानसिंह को दी, उसने कुर्सी पीछे हटायी और खड़ा होकर नोट गिनने लगा।

कावलसिंह बोला, 'सुजानसिंह, मुझे अफसोस है कि मैं तुम्हें दूसरी रकम नहीं दे सका।

सुजानसिंह ने जरा आश्चर्य से कहा, 'क्या?"

कावलसिंह पल भर चुप रह गया। उसने पहले बागड़सिंह की ओर और फिर सुजानसिंह की ओर देखा, 'दूसरी रकम तो चोर पकड़वाने के लिए थी... या हम उसका ठीक-ठीक अता-पता बता देते...।"

'लेकिन आपसे किसने कहा कि मैं चोर नहीं पकड़वाऊँगा?'

अब कावलसिंह के शरीर में फुरफुरी सी पैदा हुई क्योंकि घोड़ी हाथ आ जाने के बाद उसकी सबसे बड़ी इच्छा यह थी कि वह चोर से—उस हरामी बदमाश से भी निबट सके, जिसने यह हरकत करने की हिम्मत की थी!

सुजानसिंह फिर बोला, "आप अपने आदमी तैयार कर लीजिए मैं चोर का अता-पता बता दूँगा, लेकिन मैं इससे ज्यादा आपका साथ न दे सकूँगा। चोर से निबटना आपका और आपके आदमियों का काम है। माफ कीजिए, मुझे जल्दी है। मैं ज्यादा समय आपके साथ नहीं बिता सकता।'

यह सुनकर कावलसिंह के बाजू फड़फड़ाने लगे। उसने बागड़सिंह से कहा, "आ बागड़िया! जरा आठ दस आदमियों को कहो कि घोड़े कसकर तैयार हो जायें, जल्दी-से-जल्दी! क्योंकि फिर सुजानसिंह को लम्बा सफर भी तय करना है।"

यह सुनकर बागड़सिंह एकदम बाहर भागा। उसने बोतासिंह और कुछ दूसरे जवानों को बुलाकर कह दिया कि वे फौरन तैयार हो जायें।

बागर्डसिंह जानता था कि अब दो चार मिनट मे ही जवान तैयार हो जायेंगे। वह निश्चिन्त होकर कमरे म वापस आया तो देखा कि काबलासिंह नोटो की दूसरी गड्डी भी सुजानसिंह की ओर बढ़ा रहा है। और सुजानसिंह ने पहने तहबन्द का दायाँ पल्लू खोला। उसम एक गड्डी रखकर लपेटी और पल्लू को तहबन्द के अन्दर ठूस लिया और फिर दूसरे पल्लू म दूसरी गड्डी लपटकर ठूमी। तब वह इतमीनान स बैठकर अपनी लाठी पर छवी चढाने लगा और बागर्डसिंह की ओर देखते हुए बोला, 'अब रात पड जायगी, इसलिए मैंन सोचा एक छवी लाठी पर चढा ही लू।'

सुजानसिंह तैयार होकर बैठ गया और इस बात का इन्तजार करने लगा कि काबलासिंह के आदमी तैयार हो जायें तो वह चले।

खुशी के मारे बागर्डसिंह की खीसें निकली पडती थीं। कुछ ही पल बाद बोतासिंह न सेहन के बाहर स ही चिल्लाकर खबर दी कि सब आदमी तैयार हैं।

यह सुनकर काबलासिंह कमर के दरवाजे की ओर बढा। उसने भी अपनी लाठी पर छवी चढा ली थी। दरवाजे के बाहर जान स पहले उसने घूमकर सुजानसिंह की ओर देखा, जो उस समय सिपाही की तरह सीधा खडा था। काबलासिंह न धीरे से कहा, "आओ सुजानसिंह आदमी तैयार हैं।"

यह कहकर काबलासिंह ने एक पाव दरवाजे के बाहर रखा, लेकिन सुजानसिंह ज्यो का त्यो अपने स्थान पर खडा था।

काबलासिंह ने यही चीज महसूस की फिर गरदन घुमाकर उसकी ओर देखा तो सुजानसिंह बर्फ मे दबे हुए फौलाद के-से ठण्ड स्वर म बोला, "आपका चोर मैं हूँ। अगला कदम उठाना अब आपका काम है।

यह सुनकर बागर्डसिंह के सिर से पाव तक सनसनी सी दौड गयी। वह अपन मालिक के पीछे चलते चलते एकदम रुक गया। काबलासिंह एक पाव दरवाजे के अन्दर और एक बाहर रखे यू दिखायी दे रहा था जसे किसी ने ताबे का बहुत बडा बुत दरवाजे के आर पार रख दिया हो। सुजानसिंह के शरीर का एक रोआ भी नही हिल रहा था। वह फिर बोला, "आपकी घोडी मैं चुराकर ले गया था।'

बेशक सुजानसिंह की आवाज भारी थी और उसने यह बात धीमे स्वर मे कही थी, लेकिन काबर्लासिंह को यूं मालूम हुआ जैसे कमरे में उसने बादल की गडगडाहट की आवाज सुनी हो।

काबलासिंह ने दरवाजे के बाहर रखा हुआ पांव उठाकर फिर अन्दर रखा, और जैसे अब तक उसे सुजानसिंह की बात पर यकीन न आया हो। उसने बिलकुल बदले हुए स्वर मे पूछा, "क्या कहा तुमने ?"

सुजानसिंह चट्टान की तरह बिना हिले डुले खडा रहा। कोई चीज़ हिली तो केवल उसके होंठ— उस शाम मैं इधर से निकला। मैं उस रोज़ से पहले कभी चब्ब या आस पास के किसी गांव मे नही आया था। मेरा एक मित्र भी मेरे साथ था। जब हम आपके इस तबेले के पास से गुजरे तो दूर ही से मैंने आपकी घोडी को खेत में चरते देखा। उस समय तो हम आगे निकल गये लेकिन दो कोस जाने के बाद मैंने अपने मित्र से कहा कि तुम जाओ, मुझे एक काम से रुकना पडेगा। यह कहकर मैं अपने घोडे से उतरा और उसकी लगाम अपने मित्र के हाथ में पकडा दी। जब वह मेरी नजरों से ओझल हो गया तो मैं फिर चब्ब की ओर लौटा। उस समय तक अँधेरा छा चुका था। मैंने पहले तो घोडी को तबेले के आस-पास ढूंढा। जब वह कहीं दिखायी नही दी तो मैंने सोचा कि एक बार तबेले के अन्दर भी झांक लूं। अगर वहां भी न मिली तो फिर चब्ब में पहुँचकर जहां कहां भी घोडी होगी ढूंढ निकालूंगा—लेकिन वाहगुरु अकाल पुरख की कृपा से घोडी तबेले के अन्दर ही मिल गयी। जब मैंने इसे बिलकुल पास से देखा तो इस प्रकार मोहित हो गया कि थोडी देर तक मैं इसकी गरदन और पीठ पर हाथ फेरता रहा और फिर इसे लेकर तबेले से बाहर निकला। दरवाजे की कुण्डी पहले की तरह चढा दी और इसकी पीठ पर सवार होकर परे का परे ही निकल गया। रातोरात मैं रावी-पार करके अपने इलाके में पहुँच गया।'

काबलासिंह ने जंगली जानवर की तरह गुर्राकर पूछा, "तुम्हें काबलासिंह की घोडी ले जाने की हिम्मत कैसे हुई ?"

सुजानसिंह ने सद आंखों से बिना पलकें झपकाये काबलासिंह की ओर देखा और अपने चौडे कन्धों को बेपरवाही से हिलाकर रह गया—तब वह

फिर अपनी बे रस और सपाट आवाज़ मे बोला, "आपकी घोडी आपके खूँटे से बँधी है और उसके चोर से मैंने आपका सामना करा दिया है। आगे जैसा आप चाहे।"

इस समय तक काबलासिंह का सुर्ख चुकन्दर चेहरा और लाल हो गया। आँखें गम राख की रगत अख्तियार कर चुकी थी, तब सुजानसिंह की नजरें बागडसिंह स मिली। उसकी आखो मे बागडसिंह को एक ऐसी कैफियत दिखायी दी, जैसे वह कह रही हो, देखो! घोडी के सम्बन्ध मे किया गया मेरा वायदा पूरा हुआ। अब जिस बात का बीडा तुमने उठाया था उसकी जिम्मेदारी तुम्हारे सिर है।'

कमरे की हर चीज़ मौन थी। हर चीज़ सन्न सी गयी थी यहा तक कि एक मक्खी भी नही भिनभिना रही थी। केवल छत से लटका हुआ मकडी का जाला धीमे धीमे हिल रहा था। उसे देखकर खामखाह आश्चय होता था कि उस हिलन की हिम्मत ही कैसे हो रही थी

बागडसिंह का दिमाग भी बिलकुल चकरा गया था

अब सुजानसिंह ने अपने गले मे पडे हुए अँगोछे को सँवारकर गले से लपटा। अपनी चमकती हुई आखो से एक नजर अपनी दमकती हुई तेज़ छवी की धार पर डाली और फिर लम्बी लाठी को हाथ म तौलकर सहज भाव से कदम कमरे के दरवाज़े की ओर बढाया

काबलासिंह की मुट्ठिया भिची हुइ थी। उसके नाखून उसकी हथेलिया मे गडे जा रह थे। गम राख की सी रगतवाली उसकी आखो म से चिनगारियाँ निकल रही थीं। बागडसिंह दम रोके अपनी जगह पर स्थिर खडा था। उस कई वष पहले की वह घटना याद आयी, जब इतने ही गहरे क्रोध मे आकर उसने सामने के सेहन मे उसका जूडा पकडकर उस चारो ओर घुमाया था। उस दिन के बाद उस अपने मालिक के सामने कभी आख उठाने तक की हिम्मत नही हुई थी, और न इतन वर्षों मे उसने किसी भी व्यक्ति को इस तरह काबलासिंह को बीच मैदान मे ललकारते देखा था। वह समझ नही पा रहा था कि अब क्या होनेवाला है।

सुजानसिंह सहज चाल चलता हुआ बिना काबलासिंह की ओर देखे कमरे के दरवाज़े तक पहुचा, जहा काबलासिंह खडा था, वहाँ वह क्षण भर

के लिए ठिठका ! कावलासिंह से ज्यादा लम्बा होने के कारण उसे उस ऊँचे दरवाज़े मे से भी ज़रा झुककर निकलना पड़ा।

अब कावलासिंह ने एकदम घूमकर सुजानसिंह की पीठ पर अपनी नज़र जमा दी उसकी मुट्ठियाँ खुल-खुलकर बन्द हो रही थी। मालिक के पीछे बागड़सिंह खड़ा चुपचाप यह तमाशा देख रहा था।

सुजानसिंह की रफ्तार म कोई फर्क नही आया। न तेज़ न सुस्त कदमो से वह बढ़ता जा रहा था, यहाँ तक कि वह सेहन के दरवाज़े मे स भी निकल गया।

अब कावलासिंह न घूमकर एक चुभती हुई नज़र बागड़सिंह पर डाली और फिर निकलकर यू सेहन की ओर लपका जसे शेर शिकार पर हमला करने से पहले तेज़ी स आगे को झपटता है। सेहन के दरवाज़े तक पहुँचकर उसके पाव एकदम रुक गये और उसन अपना दायाँ हाथ उठाकर खुले दरवाज़े के तख्ते को इतन ज़ोर से अपने पजे म जकड लिया जसे अभी उसे खीचकर कब्जा समत परे उखाड़ फेंकेगा।

आगे खुले स्थान म बोनासिंह और उसके साथ कुछ और जवान लाठियो पर छवियाँ चढ़ाये इधर उधर मटरगश्ती कर रह थे। वे नहीं जानते थे कि उन्ह क्या करना है, या कहा जाना है। वे अपने मालिक की आज्ञा का इन्तज़ार कर रहे थे।

बागड़सिंह अब भी अपने मालिक के पीछे छ कदम हटकर खड़ा हुआ था। उसने देखा कि सुजानसिंह उनके जवानो के बीच से होता हुआ अपने घोडे तक पहुँचा। घोडे की लगाम खोलकर अपने हाथ मे तौली, फिर दो कदम हटकर उसने अपने तहबन्द को ज़रा ऊपर की ओर उठाकर ठूस लिया। और फिर पलक झपकते, बिना रिकाब पर पाव रखे छलाँग लगायी और काठी पर जा बैठा। फिर उसने घोडे को थपथपाया और रिकाबों पर पाँव जमाकर लगाम को हल्का सा झटका दिया। घोडा बढ चला।

। उस समय तक हर चीज़ की परछाइँ लम्बी हो चुकी थी। सारे जवान कावलासिंह को देखकर एक ओर हट गये और कावलासिंह की नज़रें अब भी उस घुड़सवार पर जमी हुई थी। सुजानसिंह ने घोडा दौडाया नही, वह पहले की ही तरह सहज गति से बढ़ता चला गया दूर कौओ के झुण्ड

काव काव करते हुए चब्बे की ओर आ रहे थे। वह घुडसवार आक के पौधो म से होता हुआ काटेदार बबूलो के झुण्ड मे अब बहुत ही धुधला सा दिखायी देने लगा था।

कावलासिह ज्या का त्यो दरवाज़े पर हाथ रखे खडा था और वागड-सिह पीछे खडा मालिक की गुद्दी पर लहलहाते हुए लाल पीले और सफेद न्हे न्हे वालो को देख रहा था

"वागडेया!"

सुनकर वागर्डसिह का कलेजा धक धक करने लगा। शरीर की पूरी शक्ति लगा देने पर ही उसके मुँह से वडी ही मरी हुई आवाज निकली, "जी!'

"टमी मे सुरजीत का रिश्ता कर देने के लिए कह रहा था?"

मालिक की यह आवाज सुनकर बागर्डसिह सु न हो गया। उसे भागने का कोई रास्ता दिखायी नही दे रहा था। अबकी उसके मुह से मरी हुई आवाज तक न निकल सकी।

अपनी वात का उत्तर न पाकर मालिक ने घूमकर उसकी ओर देखा।

वागर्डसिह ने डरते डरते अपनी पलकें ऊपर उठायी। उसने देखा कि कावलासिह की घनी मूछो तले उसके मोटे होठो पर एक हलकी सी मुस्कान च द्रमा की पहली किरण की तरह ज म ले रही है

●●●